भारत में असोक-राज

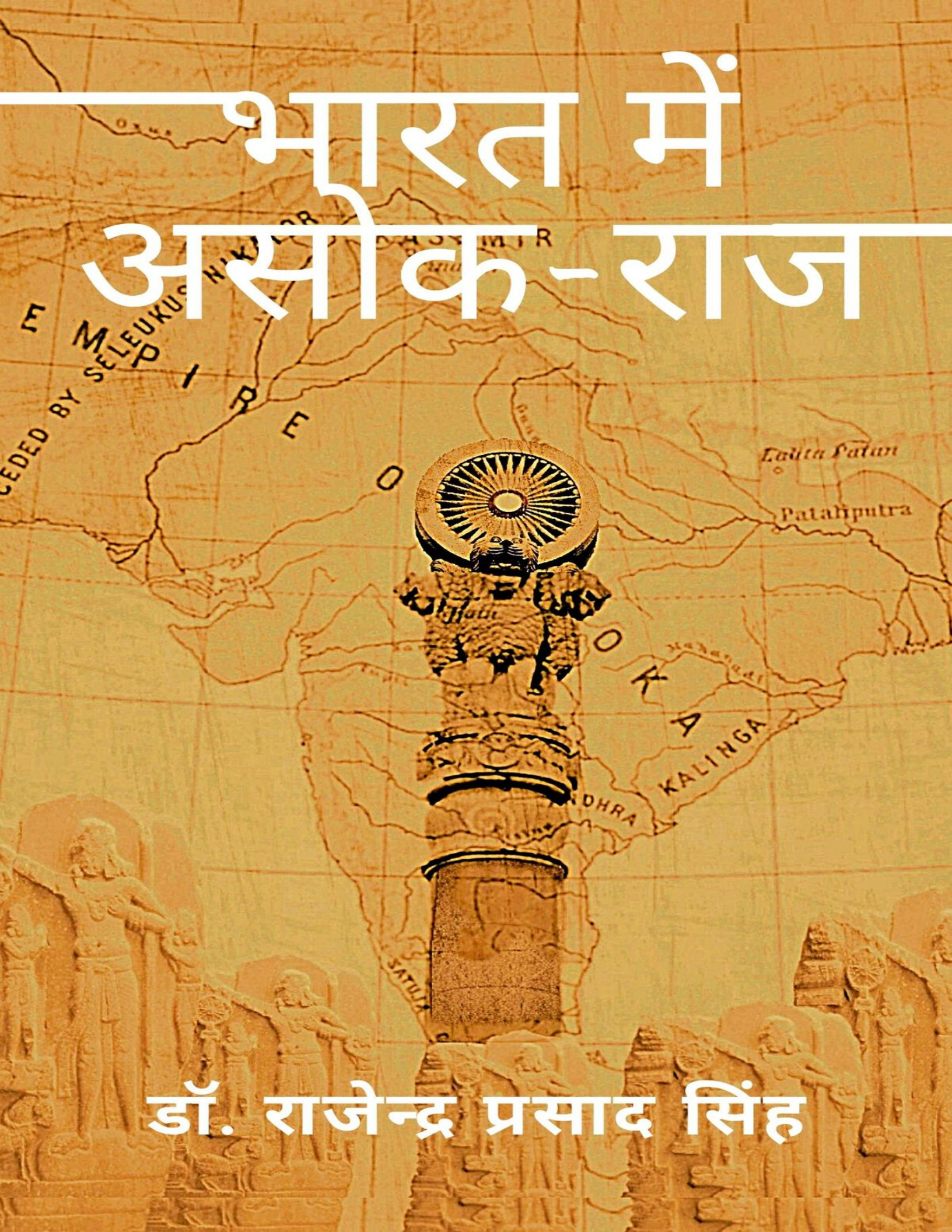

डॉ. राजेन्द्र प्रसाद सिंह

भारत में असोक - राज

राजेंद्र प्रसाद सिंह

इस पुस्तक के सर्वाधिकार सुरक्षित हैं, लेखक की अनुमति के बिना इसके किसी भी अंश को फ़ोटोकॉपी एवं रिकॉर्डिंग सहित इलेक्ट्रॉनिक अथवा मशीनी, किसी भी माध्यम से, अथवा ज्ञान के संग्रहण एवं पुनः प्रयोग प्रणाली द्वारा, किसी भी रूप में, पुनरुत्पादित अथवा संचारित -प्रसारित नहीं किया जा सकता।

©2021 राजेंद्र प्रसाद सिंह

फेसबुक- https://www.facebook.com/rajendraprasad.singh.509

अनुक्रम

भूमिका

असोक और उनका परिवार

अभिलेखों की खोज एवं जानकारियाँ

अभिलेखों का उद्घाचन तथा शोध - कार्य

राजपद के प्रतिमान और प्रशासन

असोक का धम्म - मार्ग

असोक और उनकी कलाएँ

बौद्ध चीनी यात्री और असोक

असोक का रुम्मिनदेई स्तंभलेख

चित्रावली

लेखक - परिचय

भूमिका

भारत में असोक - राज नामक यह पुस्तक विश्व के महान सम्राट असोक के जीवन तथा उपलब्धियों को केंद्र बनाकर लिखी गई है। पुस्तक में असोक तथा असोक - राज के बारे में जानकारी देने के लिए मुख्यतः उनके ही अभिलेखों को आधार बनाया गया है। कारण कि असोक पर लिखे साहित्य में बड़े पैमाने पर मिलावट है।

असोक - राज वस्तुतः भारत का स्वर्णकाल था। इसी काल में प्राचीन भारत का सबसे बड़ा साम्राज्य स्थापित हुआ। एक भाषा और लिपि से जबरदस्त राष्ट्रीय एकता कायम हुई। इसी काल में धम्म की धमक पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण - पूर्व यूरोप से लेकर दक्षिण के राज्यों तक सरसरा कर पहुँच गई थी। राज्य भी अहिंसक हो सकता है, इसकी मिसाल विश्व इतिहास में असोक - राज ने साबित कर दिया।

बुध और असोक भारत की शांति - संस्कृति के सबसे बड़े प्रतीक हैं। असोक - राज में दोनों प्रतीकों का ऐसा मणिकांचन संयोग हुआ कि भारत का गौरव बाईस सौ साल बाद भी धूमिल नहीं हो सका।

राजेंद्र प्रसाद सिंह

असोक जयंती, 2021

गाँधी नगर, सासाराम

असोक और उनका परिवार

विश्व इतिहास में सिकंदर, सीजर, नेपोलियन जैसे विजेता हुए, मगर किसी को भी इतिहास में वह स्थान प्राप्त नहीं है जो सम्राट असोक को प्राप्त है। एक ऐसा सम्राट, जिन्होंने तलवार का त्याग विजित होने पर नहीं बल्कि विजेता होने पर किया। एच. जी. वेल्स ने लिखा कि इतिहास में वर्णित हजारों राजाओं और महाराजाओं के बीच देवानंपिय असोक का नाम एक चमकदार नक्षत्र की भाँति अकेला चमक रहा है। वोल्गा से लेकर जापान तक आज भी उनका नाम आदर के साथ लिया जाता है। चीन, तिब्बत तथा भारत भी उनके बड़प्पन का बखान करते हैं।

असोक के जमाने में वर्ण - व्यवस्था नहीं थी। तब गण - व्यवस्था थी। मगर इतिहासकार असोक को कभी क्षत्रिय तो कभी शूद्र बताए जाने की खोज में लगे रहते हैं और निरर्थक इतिहास के पन्ने खर्च करते हैं। जो वर्ण - व्यवस्था सम्राट असोक के समय में नहीं थी, उसे खोजने की कोशिश जातिवादी मानसिकता का द्योतक है। तब गण - व्यवस्था थी और असोक मोरिय गण से आते थे। मगर इतिहासकार पुराणों को आधार बनाकर उन्हें शूद्र बनाने पर तुले हुए हैं।

मोरिय राजवंश की उत्पत्ति में इतिहासकार विष्णु पुराण और विष्णु पुराण की टीका का भरपूर इस्तेमाल करते हैं तथा उनके साक्ष्य से साबित करते हैं कि असोक का राजवंश शूद्र था। वे यह मानकर चलते हैं कि विष्णु पुराण काफी प्राचीन है, इसीलिए इसका सबूत भी मजबूत है। मगर विष्णु पुराण की टीका की बात छोड़िए, खुद विष्णु पुराण में कैंकिल राजाओं (4.54.55) का वर्णन है और इन कैंकिल राजाओं ने आंध्र देश पर 500 ई. से 900 ई. तक राज्य किए थे। जाहिर है कि विष्णु पुराण असोक के सैकड़ों साल बाद में लिखी गई किताब है, फिर तो विष्णु पुराण की टीका की बात ही मत चलाइए।

सम्राट असोक की लोकप्रियता का अंदाजा इस बात से लगाया जा सकता है कि उनके जीवन की दास्तान संस्कृत, पालि, तिब्बती, चीनी, बर्मी, सिंहल, थाई, लाओ और

खोतानी जैसे अनेक भाषा - ग्रंथ अपने - अपने ढंग से सुनाते हैं। कोई उनकी माँ का नाम सुभद्रांगी तो कोई धम्मा बताता है। उसी प्रकार असोक की पत्नी का नाम अलग - अलग ग्रंथों में अलग - अलग मिलता है। कहीं देवी तो कहीं पद्मावती तो और कहीं तिष्यरक्षिता मिलता है। मगर असोक की रानी के अभिलेख में उनकी पत्नी का नाम कालुवाकि मिलता है जो तीवल की माँ थी। हमारे यहाँ तिष्यरक्षिता को लेकर अनेक साहित्य रचे गए, लेकिन कालुवाकि को लेकर साहित्य में कोई हलचल नहीं है, जबकि कालुवाकि का ही पुरातात्विक सबूत हमारे पास है। चूँकि कालुवाकि नाम आर्यमूलक नहीं है। इसकी सजा कालुवाकि को साहित्य - बाहर कर दी गई ।

दुर्भाग्यवश असोक के अभिलेख उनके जीवन की प्रारंभिक घटनाओं के विषय में मौन हैं। अतः असोक के जीवन की प्रारंभिक घटनाओं को जानने के लिए हमें साहित्यिक स्रोतों पर निर्भर रहना पड़ता है। मगर ये साहित्यिक स्रोत असोक के बारे में एक - दूसरे से भिन्न जानकारियाँ उपलब्ध कराते हैं, जिससे सही तथ्य का पता लगाना कठिन हो जाता है।

असोकेतर अभिलेखों से असोक के परिवार के कुछेक सदस्यों का पता चलता है। श्री लंका के एक मामूली स्तूप के एक मामूली पत्थर पर, जो अम्पारा जिले के RAJAGALA में स्थित है, इसका प्रमाण मिला है कि महिंद थेर श्री लंका गए थे। धम्म लिपि और सिंहली भाषा में लिखा है कि यह स्तूप इदिका (इथ्थिया) थेर और महिंद थेर का है, जो इस भूमि के उज्ज्वल भविष्य के लिए यहाँ आए थे। (चित्र 1)

लेकिन थेर महिंद श्री लंका जाने के पहले पटना में कहाँ रहते थे, इसकी जाँच लॉरेंस वाडेल ने 19 वीं सदी के आखिरी दशक में की है। उन्होंने अपनी पुस्तक " डिस्कवरी आॅफ दी इग्जैक्ट साइट आॅफ असोकाज क्लासिक कैपिटल आॅफ पाटलिपुत्र " (1892) में बताया है कि पटना में जो भिखना पहाड़ी नामक मुहल्ला है, वहीं एक कृत्रिम पहाड़ी पर महिंद थेर रहते थे। भिखना पहाड़ी मुहल्ला का नाम भिखना कुँवर के नाम पर पड़ा है और भिखना कुँवर वास्तव में भिक्खु कुमार महिंद थे। जब लॉरेंस वाडेल पटना में जाँच के लिए पहुँचे थे, तब भिखना पहाड़ी पर भिखना कुँवर की पूजा होती थी। पटना का जो महेंद्रू घाट है, वह भी महिंद थेर की स्मृति कराता है।

मध्य प्रदेश के सिहोर जिले में पानगुरारिया बौद्ध विहार है। पानगुरारिया में दो शिलालेख और एक यष्टि लेख मौजूद हैं। इनकी भाषा प्राकृत और लिपि ब्राह्मी (धम्म लिपि) है। यष्टि लेख पर असोक की बेटी संघमित्ता द्वारा दान दिए जाने का विवरण अंकित है, जिससे संघमित्ता की पुरातात्विक ऐतिहासिकता पुष्ट होती है। (चित्र 2)

यहाँ मौजूद असोक के शिलालेख पर जो प्रमुख बात लिखी है, वह यह कि राजा, जो पियदसि नाम से जाने जाते थे, एक बार उपुनीथ विहार में तब यात्रा की, जब राजकुमार सम्व को मानेम देश की प्रशासनिक जिम्मेवारी थी। शिलालेख में लिखा है कि " पियदसिनामराजा कुमार सम्व मानेम देसे उपुनीथ विहार याताया "। कुमार सम्व संभवतः असोक के परिवार के जान पड़ते हैं और मानेम देश सिहोर का इलाका रहा होगा। असोक के शिलालेखों से पता चलता है कि राज परिवार के लोग जगह - जगह पर पदस्थापित थे।

सम्राट असोक की एक बेटी चारुवती थी। वह नेपाल के राजकुमार देवपाल खत्तिय से ब्याही गई थी। पति - पत्नी दोनों बुधमार्गी थे। काठमांडू से सटे चाबहिल में चारुवती का स्तूप है। इसे आम तौर पर " धन्दो चैत्य " कहा जाता है। लेकिन यह स्तूप चारुवती का ही है, इसका सटीक प्रमाण उपलब्ध नहीं था। साल 2003 में इस स्तूप का मरम्मत- कार्य हो रहा था। तब 8.6 किलोग्राम की एक ईंट मिली। ईंट पर लिखा था - " चारुवती थूप " अर्थात यह चारुवती का स्तूप है। लिखावट के ऊपर धम्म - चक्क बना है। चारुवती के जीवन के आखिरी दिन यहीं बीते थे। फिलहाल यह ईंट नेशनल म्यूजियम, छाउनी (नेपाल) में रखी है। (चित्र 3)

हमें असोक विषयक साहित्यिक दास्तानों के प्रति सजग रहने की जरूरत है, क्योंकि अनेक बौद्ध लेखकों ने असोक का जो जीवनचरित लिखा है, वह कल्पनाओं से खाली नहीं है। मिसाल के तौर पर, दीपवंश तथा महावंश में जिक्र आता है कि असोक ने 99 भाइयों की हत्या की, जबकि अनेक साहित्यिक और पुरातात्विक सबूत इसके खिलाफ हैं। राधाकुमुद मुखर्जी ने लिखा है कि असोक ने एक लेख में (शिलालेख 5) अपने और अपने भाइयों के रनिवासों (ओरोधन) का, और अपनी बहनों के निवास कक्षों का उल्लेख किया है जो पाटलिपुत्र में भी थे (हिद पाटलिपुते च) और बाहर के

नगरों में भी थे (बहिरेसु च नगरेसु)। असोक ने इन रनिवासों की देखभाल के लिए धर्म महामात्र नामक विशेष पदाधिकारी नियुक्त किए थे।

फाहियान ने भी अपने यात्रा - वृत्तान्त में लिखा है कि राजा असोक का एक छोटा भाई था। अर्हत पद प्राप्त कर वह गृध्रकूट पर्वत पर रहता था। एकांत और शांत स्थान में मग्न रहता था। राजा दिल की गहराइयों से उसका सम्मान करता था। इस प्रकार सिंहली अनुश्रुतियों पर आधारित असोक द्वारा 99 भाइयों की हत्या की बात को पुरातात्विक और साहित्यिक सबूत खारिज करते हैं। शायद इसीलिए इतिहासकारों ने संभावना व्यक्त की है कि बौद्ध लेखकों ने अपने धर्म की प्रतिष्ठा बढ़ाने के लिए असोक के आरंभिक जीवन के विषय में ऐसी अनर्गल बातें गढ़ी हों, ताकि बौद्ध धम्म की महिमा को और भी महिमामंडित किया जा सके।

कोई शक नहीं कि असोक के और भी भाई थे। उत्तराधिकार की लड़ाई भी असंभव नहीं है। मगर 99 भाइयों की हत्या की बात कहावती लगती है। यह गद्दी के लिए हुए कठिन संघर्ष का द्योतक हो सकती है।

असोक का मूल नाम उनके शिलालेखों में " असोक " मिलता है। असोक का संस्कृत रूप अशोक है। पहली बार रुद्रदामन के जूनागढ़ अभिलेख में असोक का नाम अशोक मौर्य मिलता है। जूनागढ़ अभिलेख दूसरी सदी का है। जूनागढ़ अभिलेख में लिखा है कि सुदर्शन तालाब मौर्य नरेश चंद्रगुप्त के राज्यपाल पुष्यगुप्त ने बनवाया था। अशोक मौर्य के लिए यवनराज तुषास्प ने उसे बड़ी - बड़ी नालियों से युक्त किया था। पुराणों में असोक का नाम अशोकवर्द्धन मिलता है, जो बाद में लिखे गए हैं। असोक के खुद के शिलालेखों (मास्की, गुजर्रा, नेत्तुर और उडेगोलम) में उनका नाम " असोक " लिखा मिलता है। इसलिए बात एकदम शीशे की तरह साफ है कि उनका असली नाम असोक था। (चित्र 4)

भारत के पुराने इतिहास में आखिरी बार असोक का नाम कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख में मिलता है। यह अभिलेख 12 वीं सदी का है। इसे गहड़वाल वंश की रानी ने लिखवाया है। इस पर असोक का नाम धर्माशोक लिखा है। असोक चूँकि धम्ममार्गी थे। सो उन्हें धर्माशोक कहा गया है।

राजगद्दी पर बैठने के बाद असोक ने सिर्फ एक युद्ध किए, जो कलिंग युद्ध के नाम से प्रसिद्ध है। कलिंग युद्ध को लेकर भारतीय साहित्य में अनेक काव्य और नाटक रचे गए हैं। इस युद्ध में 100000 लोग मारे गए, कई लाख बरबाद हुए और 150000 लोग बंदी बनाए गए। ये आँकड़े खुद असोक के शिलालेख से लिए गए हैं। रामशरण शर्मा ने लिखा है कि ये आँकड़े अतिशयोक्तिपूर्ण हैं। कारण कि असोक के अभिलेखों में सतसहस्र शब्द का प्रयोग कहावती तौर पर किया गया है। जो भी हो, इससे प्रतीत होता है कि इस युद्ध में हुए भारी नरसंहार से असोक का हृदय दहल गया। युद्ध की इस भीषणता का असोक पर गंभीर प्रभाव हुआ और उन्होंने युद्ध की नीति को त्याग दिए तथा रण - विजय की जगह पर धम्म - विजय को अपनाए।

असोक के दादा चंद्रगुप्त मोरिय और पिता बिंदुसार थे। असोक के दादा चंद्रगुप्त मोरिय ने आज से कोई ढाई हजार साल पहले पश्चिमोत्तर भारत की उस वैज्ञानिक सीमा को प्राप्त कर लिए थे, जिसको छूने के लिए आधुनिक काल में अंग्रेज व्यर्थ की आहें भरते रहे। बिंदुसार ने इस महान साम्राज्य को बचाए रखा। असोक ने उसे और विस्तार दिए। असोक ने 14 वें शिलालेख में स्वयं कहा है कि मेरा साम्राज्य सुविस्तृत (महालके हि विजितं) है। असोक के साम्राज्य की सीमाएँ कहाँ से कहाँ तक विस्तृत थीं, इसका पता हमें विभिन्न स्थानों से प्राप्त उनके ही अभिलेखों से चलता है। दूसरे किसी सबूत की जरूरत नहीं है। असोक का साम्राज्य उत्तर - पश्चिम में हिंदूकुश से पूरब में बंगाल तक तथा उत्तर में हिमालय की तराई से लेकर दक्षिण में मैसूर तक विस्तृत था। कलिंग और सौराष्ट्र पर भी उनका अधिकार था। प्राचीन भारत का कोई सम्राट इतने विस्तृत भू - खंड का स्वामी नहीं था।

जिस दार्शनिक और दर्शन की खोज में सम्राट असोक के पिता यूनान तक अपनी आँखें गड़ाए हुए थे, असोक की आँखों ने वो दार्शनिक और दर्शन यहीं भारत में ही खोज निकाले। उन्होंने गंगा घाटी के धम्म को उठाकर विश्व धम्म का रूप दे डाले। लेनिन ने राजनीति में मार्क्स के सिद्धान्तों को लागू किए और असोक ने राजनीति में बुद्ध के सिद्धांतों को लागू किए और इस सिद्धांत पर चलकर वे दुनिया में वो मुकाम हासिल किए जो कम ही सम्राटों को नसीब हुए। सच में असोक दी ग्रेट साम्राज्य विस्तार के सैनिक - सम्राट थे तो युद्ध की विभीषिका से आहत संवेदनशील और दुखी

मनुष्य भी थे। रमेशचंद्र मजूमदार ने लिखा है कि साम्राज्य तो उठते - गिरते रहे हैं, लेकिन असोक के माध्यम से भारत की नैतिक विजय को जो गौरव प्राप्त हुआ है, उसकी दीप्ति दो हजार साल से अधिक समय बीत जाने पर भी धुंधली नहीं हुई है।

अभिलेखों की खोज एवं जानकारियाँ

असोक के बारे में जानने का प्रामाणिक स्रोत उनके ही लिखवाए अभिलेख हैं। ये अभिलेख कहीं शिलाओं पर, कहीं स्तंभों पर और कहीं गुफाओं में लिखवाए गए हैं। इन अभिलेखों की लिपि ब्राह्मी (धम्म लिपि), खरोष्ठी, आरमेइक तथा यूनानी है। भारत के पश्चिमोत्तर में पेशावर के निकट के क्षेत्रों में पाए गए अभिलेखों की लिपि खरोष्ठी है। साम्राज्य के एकदम से पश्चिम में कंधार के निकट पाए गए अभिलेख यूनानी तथा आरमेइक लिपि में हैं। भारत के उत्तर और दक्षिण में पाए गए सभी अभिलेख ब्राह्मी लिपि में हैं। ऐसा लगता है कि सम्राट असोक ने अभिलेखों के लेखन में भूगोल का ध्यान रखा था।

असोक के अभिलेखों का पता लगाना कठिन कार्य रहा है। कारण कि ये दुर्गम जंगलों, पहाड़ों एवं वीरानों में कहीं छिपे पड़े थे। सर्वप्रथम पैड्रे टीफैनथेलर ने 1750 में दिल्ली - मेरठ स्तंभ की खोज की थी। फिर तो यह सिलसिला चल पड़ा। फिर दिल्ली - टोपरा स्तंभ की खोज हुई। इसे खोजने का श्रेय 1785 में कैप्टन पोलियर को है। जे. एच. हेरिंगटन ने इसी वर्ष 1785 में गया के निकट बराबर की पहाड़ियों में गुहा - लेख की खोज की थी। फिलहाल यह स्थान बिहार के जहानाबाद जिले में है। गुजरात प्रांत में जूनागढ़ के समीप गिरनार की पहाड़ी है। यहीं से 1822 में कर्नल टॉड ने असोक के गिरनार शिलालेख का पता लगाया था। कर्नल टॉड ब्रिटिश ईस्ट इंडिया कंपनी के अधिकारी और भारतविद थे। राजस्थान के इतिहास में उन्हें गहरी रुचि थी और राजस्थान के इतिहास पर इतना काम किया कि उन्हें राजस्थान के इतिहास - लेखन का पितामह कहा जाता है।

भुवनेश्वर के नजदीक धौली है। कहा जाता है कि इसी धौली में दया नदी के तट पर कलिंग युद्ध हुआ था। असोक का धौली शिलालेख यहीं पर खुदे हैं, जिनका पता 1837 में किट्टो ने लगाया था। सहसराम का लघु शिलालेख 1839 में ई. एल. रावेनशॉ द्वारा खोजा गया था। यह बिहार के रोहतास जिले में है और सहसराम के निकट पहाड़ी पर मौजूद है। फिलहाल इस शिलालेख की स्थिति बड़ी खराब है। 1840 में कैप्टन बर्ट ने

भाब्रु शिलालेख की खोज की थी। जौगढ़ शिलालेख का पता 1850 में वाल्टर इलियट ने लगाया था।

कालसी शिलालेख को 1860 में फारैस्ट ने खोज निकाला था। यह यमुना तथा टोंस नदियों के संगम पर है। कारलायल ने 1872 में बैराट लघु शिलालेख तथा रामपुरवा स्तंभ लेख का पता लगाया था। 1889 में कैप्टन ले ने मनसेहरा शिलालेख की खोज की थी। यह खरोष्ठी में है। लेविस राइस ने 1891 में मैसूर के तीन लघु शिलालेखों का पता लगाया था। फीहरर जर्मन के भारतविद थे। उन्होंने 1895 में निग्लीवा स्तंभ लेख की खोज की थी। फिर अगले साल 1896 में उन्होंने रुम्मिनदेई स्तंभ लेख का भी पता लगाया था। इसी लेख से बुध का जन्म - स्थल की शिनाख्त होती है। (चित्र 5)

20 वीं सदी में भी खोज जारी रही। ओरटैल ने 1905 में सारनाथ स्तंभ लेख का पता लगाया। सी. बीडन ने 1915 में मास्की अभिलेख की खोज की। यहीं खोजा गया पहला अभिलेख है, जिस पर असोक का नाम लिखा है। मास्की के बाद गुजर्रा से असोक का एक शिलालेख प्राप्त हुआ। इस पर भी असोक का नाम लिखा है। तब यह बात बिल्कुल स्पष्ट हो गई कि देवानंपिय और कोई नहीं बल्कि असोक ही हैं।

एर्रगुडि में असोक के शिलालेख उत्कीर्ण हैं। इनका पता 1929 में भूतत्वविद् अनुघोष ने लगाया था। 1961 में अहरौरा का लघु शिलालेख प्राप्त हुआ और 1966 में दिल्ली स्थित बाहापुर का लघु शिलालेख मिला।

बाहापुर के शिलालेख खोजे जाने की कहानी रोचक है। पिछले बाईस सदियों से वह अभिलेख की चट्टान धूप और वर्षा में खड़ी थी। बच्चे उस चट्टान पर खेलते थे और चरवाहे उस पर बैठकर चरते हुए चौपायों पर नजर रखते थे। बात 1966 की है, तब उस चट्टानी जगह को तोड़कर आवासीय कॉलोनी बनाने की योजना बनी। बारूद लग गई कि ठेकेदार जंगबहादुर सिंह आ धमके और नजर लिखावट पर गई। इसके पहले इस लिखावट पर किसी का ध्यान नहीं गया था।जंगबहादुर सिंह ने लिखावट की सूचना पुरातत्व विभाग को दी।

23 मार्च, 1966 को लिखावट की जाँच हुई तो पता चला कि यह सम्राट असोक का लघु शिलालेख है। यह शिलालेख दिल्ली के कालका जी मंदिर के पास बाहापुर गाँव की सीमा में है। दिल्ली में भी सम्राट असोक ने शिलालेख लिखवाए थे, इतिहास की आँखें फटी रह गईं।जिस दिल्ली के लिए इतिहास में जाने कितने खून - खराबे हुए, उसी दिल्ली में दो हजार साल से भी पहले सम्राट असोक ने शांति का संदेश दिए थे। (चित्र 6)

1989 में सन्नति से अशोक के शिलालेख मिले। यहीं से असोक की वह मूर्ति मिलती है, जिस पर " राया असोक " लिखा है। सन्नति की कहानी बाहापुर से भी रोचक है। चंद्रलाबा देवी के मंदिर की छत गिरी। छत मूर्ति पर गिरी। छत गिरने से पता चला कि देवी की मूर्ति, जिस पीठ पर स्थापित थी, वह असोक का शिलालेख है। फर्श टूटा तो भी असोक के शिलालेख मिले। अब सन्नति की पहचान बड़े बौद्ध - स्थल के रूप में हुई है।

21 वीं सदी में भी खोज का सिलसिला रुका नहीं। अभी तक बिहार में सिर्फ सहसराम का लघु शिलालेख ज्ञात था। नई खोज में एक और शिलालेख का पता चला है। यह खोज 2009 में हुई है। कैमूर जिले के बसहा गाँव के पास पहाड़ी पर असोक का नया लघु शिलालेख हासिल हुआ है। जिस क्षेत्र में यह अभिलेख मिला है, उसे मठ मोरिया कहा जाता है। मठ मोरिया का नाम मोरिय राज असोक के नाम पर है। शिलालेख के ऊपर प्राकृतिक शैल - छज्जा है। सामने एक बड़ा - सा प्राकृतिक पत्थरों का प्लेटफॉर्म है, जहाँ बीसेक लोग आराम से उठ - बैठ सकते हैं। अभिलेख के लेखन में किसी लेप का प्रयोग जान पड़ता है, जिससे उसकी चमक बनी हुई है। अभिलेख में कुल मिलाकर 9 पंक्तियाँ हैं और इसके अक्षरों की लिखावट लगभग समरूप है। (चित्र 7)

इस प्रकार असोक के इतिहास - लेखन के लिए प्रचुर मात्रा में पुरातात्विक सबूत मिल गए हैं। अभी और भी अभिलेख मिलेंगे, इस संभावना से इंकार नहीं किया जा सकता है। आश्चर्य कि असोक की राजधानी पटना से अभी तक एक भी अभिलेख नहीं मिले हैं। आशा है कि वहाँ भी मिलेंगे।

असोक ने महत्वपूर्ण स्थानों पर, नगरों के समीप, प्रसिद्ध मार्गों पर, पहाड़ियों पर अनेक अभिलेख उत्कीर्ण कराए हैं। ये अभिलेख मुख्यतः तीन प्रकार के हैं - 1. शिलालेख 2. स्तंभलेख और 3. गुहालेख। शिलालेख दो प्रकार के हैं - 1. बड़े शिलालेख और 2. लघु शिलालेख। स्तंभलेख भी दो प्रकार के हैं - 1. सात स्तंभलेख और 2. लघु स्तंभलेख। गया के समीप बराबर नामक पहाड़ी पर चार कृत्रिम गुफाएँ हैं। इनमें से तीन में असोक के तीन गुहालेख मिलते हैं।

असोक के सात स्तंभलेख छः स्थानों से प्राप्त हुए हैं - 1. दिल्ली - टोपरा 2. दिल्ली - मेरठ 3. इलाहाबाद 4. लौरिया अरराज 5. लौरिया नंदनगढ़ और 6. रामपुरवा। प्रथम दो को फिरोजशाह तुगलक ने टोपरा और मेरठ से 1356 में दिल्ली उठा लाए थे। तीसरा स्तंभ मूल रूप से कौशांबी में था। बाद में इसे इलाहाबाद लाया गया है। अंतिम तीन स्तंभ उत्तरी बिहार में हैं। भोजपुरी में लौर का मतलब लाठी होता है। चूँकि पहले स्तंभों की शिनाख्त भीम की लाठी के रूप में की गई थी। इसीलिए लौरिया अरराज और लौरिया नंदनगढ़ में लौरिया (लौर) शब्द जुड़ा है।

लघु स्तंभलेख सारनाथ, साँची और कौशांबी में पाए जाते हैं। मठ संबंधी फूट से होनेवाली हानि का इनमें वर्णन है। तराई के स्तंभलेखों में से एक रुम्मिनदेई तथा दूसरा निग्लीवा में है। पहला गौतम बुध तथा दूसरा कोणागमन बुध की स्मृति में है। इसलिए इन्हें स्मारक स्तंभलेख भी कहा जाता है।

बड़े शिलालेखों को चतुर्दश शिलालेख भी कहा जाता है। चौदह प्रज्ञापन होने के कारण ये चतुर्दश शिलालेख कहलाते हैं। इनमें असोक के नैतिक जीवन और उनके राज्य के विशेष नियमों का मुख्य रूप से उल्लेख है। ये बड़े शिलालेख शाहबाजगढ़ी, मनसेहरा, गिरनार, सोपारा, कालसी, एर्रगुडि, धौली तथा जौगढ़ से मिले हैं।

चतुर्दश शिलालेखों के पहले लेख में जीव नहीं मारने तथा हिंसक उत्सव नहीं मनाने की बातें कही गई हैं। दूसरे में मनुष्यों और पशुओं के लिए चिकित्सालय की स्थापना का जिक्र है तथा जगह - जगह पर उपयोगी औषधियों को लगाए जाने की चर्चा है। इसी शिलालेख में सम्राट द्वारा कुएँ खुदवाने और वृक्ष लगवाए जाने का भी उल्लेख मिलता है। तीसरे में युक्त, राजुक और प्रादेशिक नामक राज - कर्मचारी का वर्णन है।

चौथे में जनता को कई नैतिक कर्तव्यों को किए जाने की प्रेरणा है। पाँचवें में मुख्य रूप से धर्म - महामात्र की नियुक्ति और उनके कर्तव्यों को बताया गया है। छठे में राजपद के प्रतिमान अंकित हैं।

सातवें में सांप्रदायिक सौहार्द की बातें हैं। आठवें में मुख्य रूप से अशोक की संबोधि यात्रा का विवरण प्राप्त होता है। नौवाँ धम्म मंगल से संबंधित है। दशवें से पता चलता है कि छोटे और बड़े लोगों के बीच राज्य समानता का व्यवहार करता है। ग्यारहवाँ मुख्य रूप से धम्म दान पर केंद्रित है। पुनः बारहवें में सांप्रदायिक सौहार्द बनाए जाने के लिए सूत्र दिए गए हैं। तेरहवें में कलिंग युद्ध की विभीषिका और उससे सम्राट के मन में हुए पश्चाताप का वर्णन है। आखिरी में अभिलेखों के लेखन में जो समस्याएँ आई हैं, उनका जिक्र है।

दूसरे प्रकार के शिलालेख को इतिहासकारों ने लघु शिलालेख कहा है। लघु शिलालेख भाब्रु, रूपनाथ, गुजर्रा, सहसराम, मास्की, ब्रह्मगिरि, सिद्धापुरा, जटिंगरामेश्वर, एर्रगुडि, गोविमठ, पालकिगुण्डु, राजुल मंडगिरि, अहरौरा, नेत्तुर, उडेगोलम, बाहापुर और बसहा से मिले हैं।

इतिहास के नजरिए से असोक के शिलालेखों का बहुत महत्व है। इन शिलालेखों के आधार पर तत्समय के राजनीतिक, सांस्कृतिक तथा सामाजिक परिवेश को जान सकते हैं। खुद असोक के जीवन - संबंधी बहुत - सी बातों की जानकारी मिलती हैं। असोक के साम्राज्य की सीमाएँ भी पता चलती हैं। इनसे यह भी पता चलता है कि विदेशी राजाओं से तब भारत का कैसा संबंध था।

ये अभिलेख असोक के चरित्र और कार्य - पद्धति पर प्रकाश डालते हैं। राजपद के आदर्श और शासन के तरीके भी इनसे मालूम होते हैं। इन शिलालेखों में मनुष्य के कर्तव्यों का भी अंकन है। गौतम बुध के मूल सिद्धांत इनमें संगृहीत हैं। उस युग में छापखाने नहीं थे। इसीलिए असोक ने नाना प्रकार की बातें इन अभिलेखों में अंकित कराए हैं।

अभिलेखों का उद्घाचन तथा शोध - कार्य

सातवीं सदी में जब ह्वेनसांग भारत आए थे, तब यहाँ ब्राह्मी / धम्म लिपि पढ़ने वाले लोग थे। अभिलेखों की भाषा समझी जाती थी। पाटलिपुत्र का वर्णन करते हुए ह्वेनसांग ने लिखा है कि छाप वाले विहार के पास थोड़ी दूर पर लगभग 30 फीट ऊँचा एक बड़ा पाषाण - धम्मस्तंभ है। इस पर असोक कालीन लिपि में लिखा हुआ है, जिसका अभिप्राय ह्वेनसांग ने बताए हैं। इसका मतलब हुआ कि तब असोक के स्तंभलेखों को समझ लिया जाता था। 12 वीं सदी में भी असोक का नाम विलुप्त नहीं हुआ था। कुमारदेवी के सारनाथ अभिलेख में असोक का नाम गर्व के साथ अंकित है। कुमारदेवी गहड़वाल वंश की रानी थीं।

सारनाथ के उत्खनन में एक अभिलेख मिला है।वहीं म्यूजियम में है। पत्थर पर लिखा है। 12 वीं सदी का है। भाषा संस्कृत है। लिपि नागरी है। इसे कुमार देवी का सारनाथ अभिलेख कहा जाता है। कुमार देवी गहड़वाल नरेश गोविंदचद्र की पत्नी और काशिराज जयचंद्र की दादी थीं। जयचंद्र की दादी कुमार देवी बौद्ध थीं। सम्राट असोक उनके प्रेरक थे। कुमार देवी ने सारनाथ में भव्य धम्मचक्र - जिन विहार का निर्माण कराया था। नौ मंजिला था। बीच में जलकूप था। स्नानागार था। 800 फीट लंबा बड़ा - सा परिसर था। कुमार देवी द्वारा नौ मंजिला बौद्ध विहार बनाए जाने की बात इस अभिलेख में विस्तार से लिखी हुई है। अभिलेख को शब्दों से श्रीकुंद ने सजाया है और इसे शिल्पी वामन ने पत्थरों पर उकेरा है। सब कुछ लिखा हुआ है। जो लोग यह मानते हैं कि सम्राट असोक का नाम भारत की भूमि से काफी पहले मिट चुका था। उन्हें यह अभिलेख पढ़ना चाहिए। 12 वीं सदी का यह अभिलेख डंके की चोट पर दावा करता है कि सम्राट असोक हजार साल से भी अधिक समय तक भारत की जनता की याददाश्त में जीवित थे। अभिलेख में सम्राट असोक का नाम लिखा है और गहड़वाल खानदान की रानी कुमार देवी ने सारनाथ में फिर से असोक - राज स्थापित करने की बात कही है। (चित्र 8)

लेकिन सल्तनत काल में असोक की प्राचीन लिपि को लोग भूल चुके थे। दिल्ली का सुल्तान फिरोजशाह तुगलक ने असोक के दो स्तंभ टोपरा और मेरठ से दिल्ली उठा लाए थे। इन पर लिखे अभिलेखों को पढ़ने के लिए सुल्तान ने पंडितों को आमंत्रित किए थे। लेकिन कोई पढ़ नहीं सका। तब के इतिहासकार शम्स ए सिराज अफीफ ने अपनी पुस्तक " तारीख़ ए फिरोजशाही " में लिखा है कि कुछेक ने बताया कि इस पर लिखा है कि कोई इस स्मारक - स्तंभ को हिला नहीं सकता है, भविष्य में फिरोज तुगलक इस देश के सुल्तान होंगे, वहीं इसे उठाकर ले जा सकते हैं। अफीफ ने यह भी बताया है कि तब ये स्तंभ भीम की लाठी कहे जाते थे।

स्तंभ - लेखों को पढ़ने की बात छोड़िए, लोगों को यह भी नहीं पता था कि ये स्तंभ किसने खड़े करवाए हैं। अकबर भी इन अभिलेखों को पढ़ने के लिए उत्सुक थे। मगर उस समय का कोई विद्वान इन्हें पढ़ नहीं सका।

शुरू - शुरू में जब अंग्रेज आए तो उनको एक अलग प्रकार का भ्रम हुआ। 17 वीं सदी के मुगल काल में अंग्रेज यात्री टॉम कोरिएट भारत आए और असोक स्तंभ को देखकर एल. ह्विटकर को चिट्ठी लिखी कि मैं भारत के दिल्ली शहर में आया, जहाँ पर सिकंदर ने पोरस को जीतने की याद में एक बड़ा स्तंभ खड़ा कराया है जो अब तक मौजूद है। जब असोक स्तंभ को सिकंदर का खड़ा कराया मान लिया गया, तब अनेक यूरोपियन यात्रियों ने उस पर लिखे अभिलेख को ग्रीक में लिखा मान लिया, क्योंकि सिकंदर ग्रीक का था।

भ्रम का नया सिलसिला चालू हुआ। एडवर्ड टेरी ने लिखा कि टॉम कोरिएट ने मुझसे कहा कि मैंने दिल्ली में ग्रीक लेख वाला बहुत बड़ा पाषाण स्तंभ देखा है। दरअसल असोक के शिलालेखों की लिपि मामूली देखने वाले को ग्रीक लिपि का भ्रम उत्पन्न करती है। ये सब बातें कनिंघम के आर्कियोलॉजिकल सर्वे की रिपोर्ट के जिल्द प्रथम में पृष्ठ 163 - 64 पर लिखी है।

चार्ल्स मेलेट ने 1795 में एलोरा की गुफाओं के छोटे - छोटे लेखों की छापें तैयार की। छापें विलियम जोन्स के पास भेजी गईं। विलियम जोन्स ने उन्हें विल्फर्ड के पास पढ़ने के लिए भेज दी। विल्फर्ड ने उन लेखों को कुछ का कुछ पढ़कर अंग्रेजी अनुवाद

सहित विलियम जोन्स के पास भेज दिए। बहुत वर्षों तक विल्फर्ड के पाठ को शुद्ध माना जाता रहा। बाद में पता चला कि विल्फोर्ड ने कपोल - कल्पित पढ़ दिए हैं। यह बात गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने अपनी पुस्तक " भारतीय प्राचीन लिपिमाला " में लिखी है।

एक दूसरा प्रसंग हजारीप्रसाद द्विवेदी ने लिखा है कि विलियम जोन्स अभिलेखों को पढ़ने को लेकर पसोपेश में थे। आखिरकार विलियम जोन्स ने बनारस के तत्कालीन हाकिम के पास असोक की लिपियों की छाप भेजी कि आप इसे बनारस के किसी विद्वान पंडित से पढ़वाइए। इसलिए कि बनारस विद्वान पंडितों का शहर है।बनारस के एक विद्वान पंडित ने इसे पढ़कर बताए कि इस पर युधिष्ठिर का गुप्त बनवास लिखा है। इतना ही नहीं, उस विद्वान पंडित ने असोक की लिपि को पढ़ने की एक जाली किताब भी लिख डाली और बताए कि मैंने सही पढ़ा है।

इस प्रकार से अनेक विद्वानों ने असोक की लिपि के उद्वाचन में भ्रम पैदा किए। आरंभ के पुरालिपिविदों ने भी इसी भ्रम में सोचा कि असोक के लेखों की भाषा संस्कृत है। खुद प्रिंसेप इस भ्रम के शिकार हुए और बहुत दिनों तक इन्हें संस्कृत भाषा में लिखा हुआ मानकर पढ़ रहे थे। इस कारण धम्म लिपि का उद्वाचन होने में देर हुई। अंत में जेम्स प्रिंसेप (1799 - 1840) ने 1837 में साँची के कुछ दान - लेखों में " दानं " शब्द के अक्षरों को पहचाना और फिर उन्होंने धम्म लिपि के शेष अक्षरों को भी पहचान लिए। जेम्स प्रिंसेप की मृत्यु से सिर्फ यह तीन साल का फासला है वरना श्रम निरर्थक हो जाता। इस महान खोज के बाद भारतीय इतिहास की दिशा बदल गई और हमें फिर से असोक जैसे महान सम्राट मिले।

जिस समय ब्राह्मी लिपि को पढ़ने का प्रयास जारी था, उसी समय में खरोष्ठी लिपि को भी पढ़ने की कोशिश हो रही थी। अफगानिस्तान में प्राचीन शोध कार्य में लगे हुए मिस्टर मेसन को जब पता चला कि पश्चिमोत्तर के विदेशी राजाओं के सिक्कों पर एक ओर ग्रीक लिपि में जो नाम हैं, ठीक वही नाम दूसरी ओर खरोष्ठी लिपि में हैं। तब उन्होंने मीनाण्डर, अपोलोडोटस, हर्मिअस, बॅसिलेअस और सॉटेरस शब्दों के खरोष्ठी चिह्न पहचान लिए। मेसन ने जो पढ़ा, उसे परीक्षण के लिए प्रिंसेप को भेज दिए।

प्रिंसेप ने मिलान किए तो पाए कि सिक्कों पर जो एक ओर ग्रीक में लिखा है, वहीं दूसरी ओर खरोष्ठी में लिखा है। चूँकि ग्रीक लिपि पढ़ी जा चुकी थी, सो उसी आधार पर खरोष्ठी में लिखे 12 राजाओं के नाम तथा 6 खिताब पढ़ लिए गए। सब प्राकृत भाषा में लिखा था, मगर इन्हें पहलवी मान लेने से कार्य में बाधा पहुँची थी। पुनः 1838 में दो बैक्ट्रियन ग्रीक राजाओं के सिक्कों पर प्राकृत भाषा मे लेख देखते ही प्रिंसेप समझ गए कि खरोष्ठी लिपि के ये सब लेख प्राकृत भाषा में हैं। फिर शोध आगे बढ़ा। 17 अक्षर पहचान लिए गए। नॉरिस ने 6 अक्षर पहचाने और जनरल कनिंघम ने शेष अक्षरों को पहचान कर खरोष्ठी की वर्णमाला पूरी कर दी।

बड़ी मशक्कत से असोक के अनेक अभिलेख खोजे गए। प्रिंसेप, कनिंघम, मेसन जैसे दर्जनों विद्वानों ने रात - दिन मेहनत कर उन्हें पढ़ा। 1750 में अशोक के स्तंभ का पहली बार पता चला था। इन्हें पढ़ने में 87 साल का समय लगा। फिर असोक पर शोध - कार्यों का सिलसिला चल पड़ा। असोक के अभिलेख पढ़े जाने के कोई 40 साल बाद 1877 में जनरल कनिंघम ने " कार्पस इंस्क्रिप्शनम इंडिकेरम " का प्रथम खंड प्रकाशित कराया, जिसमें असोक के शिलालेख संपादित हैं। बाद में ई. हुल्श ने इसे नए ढंग से संपादित किए। हुल्श जर्मनी के प्राच्यविद थे और असोक के शिलालेखों के प्रखर जानकार थे। उनकी संपादित पुस्तक " इंस्क्रिप्शन्स आॅफ असोक " 1925 में प्रकाशित हुई।

जनरल कनिंघम के बाद 1881 में सेनार्ट ने फ्रेंच भाषा में असोक के अभिलेख प्रकाशित कराए। जे. एम. मैकफेल ने 1918 में असोक पर स्वतंत्र किताब लिखी। प्रसिद्ध इतिहासकार विन्सेंट स्मिथ ने " असोक : दी बुद्धिस्ट एम्परर आॅफ इंडिया " तथा " ईडिक्ट्स आॅफ असोक " लिखकर भारत के इस महान सम्राट को अमर बना दिया। गौरीशंकर हीराचंद ओझा ने असोक की धम्म लिपि पर 1923 में महत्वपूर्ण कार्य किए। 1924 में ए. सी. वूल्नर ने असोक पर बेहद महत्वपूर्ण पुस्तक लिखी। ठीक इसके अगले साल 1925 में डी. आर. भंडारकर की पुस्तक " असोक " प्रकाशित हुई। भंडारकर ने असोक के इतिहास - लेखन में बड़े पैमाने पर अभिलेखों का उपयोग किए। राधाकुमुद मुखर्जी ने 1928 में इसी नाम से अलग किताब लिखी। बेनी माधब

बरूआ ने " असोक एंड हिज इंस्क्रिप्शन्स " नामक पुस्तक लिखी, जिसका प्रथम प्रकाशन 1946 में हुआ था।

1947 में देश आजाद हुआ और आजाद भारत में भी असोक पर काम किए जाने का सिलसिला रुका नहीं। 1956 में अमूल्यचंद्र सेन ने " असोकाज ईडिक्ट्स " लिखी । 1975 में डी. सी. सरकार ने " इंस्क्रिप्शन्स आॅफ असोक " प्रकाशित कराया। बी. एन. मुखर्जी ने 1984 में असोक के आरमेइक शिलालेखों का अध्ययन किए।

इस दिशा में आगे असोक पर अनेक शोध कार्य हुए और अनेक किताबे लिखी गई। दी ईडिक्ट्स आॅफ किंग असोक (1993), असोक दी ग्रेट (2002), ईडिक्ट्स आॅफ किंग असोक (2010), असोक : दी सर्च फॉर इंडियाज लॉस्ट एम्परर (2012) तथा असोक हिस्ट्री एंड इंस्क्रिप्शन्स (2013) पठनीय हैं।

इतिहास के साथ - साथ साहित्य भी पीछे नहीं रहा। चंद्रराज भंडारी ने 1923 में " सम्राट अशोक " नामक नाटक लिखा तो लक्ष्मीनारायण मिश्र ने 1926 में " अशोक " नाम से नाटक की रचना की। 1935 में दशरथ ओझा का विख्यात नाटक " प्रियदर्शी सम्राट अशोक " प्रकाशित हुआ।

नाटक ही नहीं बल्कि हिंदी का काव्य - क्षेत्र भी असोक से अछूता नहीं रहा। जयशंकर प्रसाद की कविता " अशोक की चिंता ", रामधारी सिंह दिनकर की कविता " पाटलिपुत्र की गंगा ", भवानी प्रसाद मिश्र के खंड - काव्य " कालजयी " और अज्ञेय के काव्य - नाटक " उत्तर प्रियदर्शी " की रचना सम्राट असोक के जीवन की घटनाओं पर आधारित हैं। सिर्फ असोक पर ही नहीं बल्कि उनके जीवन से जुड़ी घटनाओं तथा पात्रों पर भी भरपूर साहित्य रचे गए। कलिंग युद्ध पर अनेक काव्य और नाटक लिखे गए। असोक से जुड़े चंद्रगुप्त मोरिय, कुणाल, तिष्यरक्षिता, चारुमित्रा जैसे अनेक नाम हैं, जिन पर अनेक साहित्य रचे गए। सचमुच भारत की शांति संस्कृति में असोक जिस ऊँचाई पर उठे हैं, उस ऊँचाई को भारतीय राज - परंपरा में दूसरा कोई उठ नहीं सका।

राजपद के प्रतिमान और प्रशासन

असोक का राजपद के प्रतिमान बड़े ऊँचे थे। वह यह कि हर समय और हर जगह मैं जनता की आवाज सुनने के लिए तैयार हूँ। चाहे मैं भोजन कर रहा होऊँ, चाहे महल में होऊँ, मैं सो रहा होऊँ या उद्यान में होऊँ, मेरे राज्य के प्रतिवेदक जनता की कोई भी बात मुझ तक पहुँचा सकते हैं। सर्व लोकहित मेरा कर्तव्य है। सर्व लोकहित से बढ़कर कोई दूसरा कर्म नहीं है।

इतिहास गवाह है कि अनेक राजाओं ने एक से बढ़कर एक उपाधियाँ धारण की। कोई महाराजा तो कोई महाराजाधिराज की उपाधि धारण की। ये असोक थे, जिन्होंने सिर्फ राजा कहलाना पसंद किए। दुनिया के इतिहास में ऐसे राजा भरे पड़े हैं, जिन्होंने अपने को ईश्वरतुल्य या ईश्वर ही मान बैठे। कुछेक ने सीधे - सीधे परमेश्वर जैसी उपाधियाँ धारण की। असोक ने न तो अपने को ईश्वरतुल्य बताए और न ईश्वर बताए। असोक ने संपूर्ण प्रजा को अपनी संतान बताए हैं। माता - पिता के दिल में संतान के प्रति जो प्रेम होता है, जो ममता होती है, जो करुणा होती है, जो संवेदनशीलता होती है, वो सब सम्राट असोक के दिल में मौजूद थे।

असोक ने अपने अभिलेखों में जिन दो विशेषणों का प्रयोग किए हैं, उनमें एक देवानंपिय और दूसरा पियदसिन है। कुछेक इतिहासकारों का इल्जाम है कि असोक ने देवानंपिय की उपाधि धारण कर अपने में दैवी शक्ति आरोपित कर रहे थे। लेकिन देवानंपिय में जो देव है, वह बुध के लिए प्रयुक्त है। बुध ही देव हैं। इसीलिए चीनी यात्रियों ने अपने यात्रा - वृत्तांतों में बुध को बुधदेव कहे हैं। असोक के अभिलेखों में कहीं भी किसी देवी - देवता का जिक्र नहीं है। इसलिए देवानंपिय का अर्थ देवताओं का प्रिय राजा करना इतिहास का गला घोंटना है। असोक ने कभी भी अपनी दैवी उत्पत्ति का दावा नहीं किए। देवानंपिय प्राकृत का शब्द - रूप है। संस्कृत में देवानामपिय कर व्याख्या करना गलत है। असोक का राजपद के प्रतिमान मुख्य रूप से कलिंग के शिलालेखों और छठे शिलालेख में मिलते हैं।

कलिंग के शिलालेखों में असोक ने बहुत ही साफ कहा है कि सभी मनुष्य मेरी संतान हैं। मैं जिस प्रकार अपनी संतान के लिए सुखी होने की कामना करता हूँ, उसी प्रकार सभी मनुष्यों के लिए भी सुखी होने की कामना करता हूँ। उन्होंने राजुकों को जनता की धाय बताए हैं (चौथे स्तंभलेख)। जिस प्रकार माता - पिता अपनी संतान को विश्वास के साथ धाय को सौंप देते हैं, उसी प्रकार मैंने भी अपनी प्यारी जनता को राजुक रूपी धाय को इस विश्वास के साथ सौंप दिए हैं कि वे उनकी अच्छी तरह से देखभाल करेंगे। नौकरशाही का ऐसा रूप हजारों साल पहले देख कर आश्चर्य होता है।

जयचंद्र विद्यालंकार ने अपनी पुस्तक " इतिहास - प्रवेश " (1938) में लिखा है कि शासन के दिन - ब - दिन चलाने को मौर्य - युग में अनुशासन कहते थे। गुप्त - युग के लेखों में प्रशासन शब्द का प्रयोग हुआ है। असोक के अभिलेखों में प्रशासन जैसे शब्द नहीं मिलते हैं। असोक का जो अनुशासन था, वह धम्म केंद्रित था। इसीलिए सम्राट असोक ने सप्त स्तंभलेख के प्रथम प्रज्ञापन में लिखवाए हैं कि धम्मानुसार लोगों का पोषण करो, धम्मानुसार शासन का विधान करो और धम्मानुसार शासन करो।

अनेक इतिहासकारों को भ्रम हुआ है कि धर्म का बिगड़ा हुआ रूप धम्म है। इसीलिए असोक के इतिहास - लेखन में नाना प्रकार की गड़बड़ियाँ हुईं हैं। धम्म मूल है। इसी से धर्म का विकास हुआ है। धम्म से ध्रम बना, फिर ध्रम से धर्म बना है। यह विकास - क्रम असोक के शिलालेखों में दिखाई पड़ता है। पश्चिमोत्तर के शिलालेखों में धम्म को ध्रम लिखा है और बाद के संस्कृत अभिलेखों में यही धर्म हो गया है, जैसा कि हम जूनागढ़ के संस्कृत अभिलेख में धर्म का प्रयोग देखते हैं। (चित्र 9)

धम्म से धर्म का विकास हुआ है, मगर धम्म और धर्म के अर्थ में फर्क है। खुद असोक के कंधार शिलालेख इसकी गवाही देता है। आज से कोई दो हजार साल से भी पहले सम्राट असोक ने धम्म का अनुवाद ग्रीक में कराए हैं। यह अनुवाद द्विभाषी कंधार शिलालेख पर अंकित है। तब असोक के पास बेहतर दुभाषिए थे। कंधार शिलालेख में धम्म का अनुवाद ग्रीक में युसेबेइया कराया गया है। यूसेबेइया का अर्थ ग्रीक भाषा में रिलिजन नहीं होता है। ग्रीक भाषा में रिलिजन के लिए थ्रिस्किया है। इसलिए धम्म में

वो भाव नहीं है, जो वर्तमान के धर्म में है। धम्म मूल रूप से करुणा और प्रेम के निकट का शब्द है।

असोक का शायद ही कोई अभिलेख हो, जिनमें धम्म शब्द का प्रयोग न हो। वहाँ दान भी धम्म दान है, यात्रा भी धम्म यात्रा है, मंगल भी धम्म मंगल है, लिपि भी धम्म लिपि है, विजय भी धम्म विजय है। चौथे शिलालेख में लिखा है कि धम्मानुशासन से अहिंसा, जीव - संरक्षण, बड़ों की सेवा सहित अन्य प्रकार की मानव नैतिकता से संबंधित मामले बढ़े हैं। धम्मानुशासन नेक काम है। धम्मानुशासन का बढ़ते जाना ही श्रेष्ठ है। धम्मानुशासन शांति, प्रेम और करुणा का मार्ग है। असोक के जमाने में सत्ता का स्वरूप चाहे जो भी रहा हो, मगर सत्ता कभी भी जनता के साथ बल - प्रयोग में विश्वास नहीं करती थी।

सत्ता जब निरंकुश होती है, तब वह नाना प्रकार के दमनकारी हथकंडों का इस्तेमाल करती है। वह बड़े पैमाने पर पुलिस का प्रयोग करती है, तगड़ी फौज रखती है, जेलों का धुँआधार इस्तेमाल करती है और कर्फ्यू, लाठी - चार्ज, अश्रु - गैस जैसे नए - नए औजारों की ईज़ाद करती है। सिंधु घाटी सभ्यता में भी धम्म का शासन था। इसीलिए वहाँ भी जेल जैसी कोई संरचना नहीं मिलती है। बैरक नहीं मिलती। तलवारें सिरे से गायब हैं।

असोक के सातवें शिलालेख में जिक्र है कि सभी स्थानों पर सभी संप्रदाय के लोग निवास करें। यह एक प्रकार से आधुनिक काल में नागरिकों को राज्य द्वारा दिया गया मौलिक अधिकार है। साम्राज्य विशाल था। मगर संप्रदाय के आधार पर किसी को कहीं आने - जाने या बसने से रोका नहीं जाता था। तीसरे शिलालेख में जो राज्यादेश जारी किया गया है कि युक्त, राजुक और प्रादेशिक हर 5 वें वर्ष पर धम्मानुशासन बताने के लिए दौरे पर जाएँ तो वह एक प्रकार से नौकरशाहों की सेवा - संहिता है, जिसे आज की भाषा में सर्विस कोड कहते हैं।

सम्राट खुद राजदरबार छोड़ कर जनता के बीच जाते थे। राज - अधिकारियों को भी इस प्रकार के निर्देश दिए गए थे। घूमकर लोगों से सुख - दुख पूछने की परंपरा

असोक ने चालू की थी। जनता की तकलीफ़ों को जानने के लिए 256 रातें राजमहल से बाहर बिताए जाने का बूता असोक महान में था।

किसी ने देव ऋण तो किसी ने ऋषि ऋण और किसी ने पितृ ऋण चुकाया, वो सम्राट असोक थे, जिन्होंने प्रजा ऋण चुकाया था। वे छठे शिलालेख में प्रजा ऋण चुकाने की बात करते हैं। कारण कि असोक प्रजावत्सल सम्राट थे। राजत्व के संबंध उनकी धारणा पितृपरक थी। असोक - राज में महिलाएँ भी उपेक्षित नहीं थीं। महिलाओं के हित के लिए बाकायदे विभाग था। असोक के 12 वें शिलालेख में स्त्रियाध्यक्ष का जिक्र है। पूरे इतिहास में असोक पहले सम्राट दिखाई पड़ते हैं, जिन्होंने नौकरों के साथ भी समानता का व्यवहार किए जाने का लिखित फरमान जारी किए।

अशोक - राज में सत्ता के केंद्र में धम्म था। धम्म से गृह - नीति संचालित थी और धम्म से ही विदेश नीति भी संचालित थी। पड़ोसी देशों के साथ असोक ने जो मैत्री, शांति और सह - अस्तित्व की नीति अपनाई थी, उसके केंद्र में धम्म था। भारी फौज के बावजूद भी असोक ने पड़ोसी देशों में राजनीतिक प्रभुत्व स्थापित करने की बात कभी नहीं सोची। वे धम्म विजय के हिमायती थे। इसीलिए उन्होंने पश्चिमी एशिया, उत्तरी अफ्रीका और दक्षिण - पूर्व यूरोप से लेकर दक्षिण के राज्यों तक में धम्म के सिद्धांत और कल्याणकारी कार्यक्रम फैलाए।

भारत ने पहले - पहल असोक के समय में ही अंतरराष्ट्रीय जगत में सार्वजनिक जन - कल्याण के कार्यक्रम चलाए। आज जो अत्यंत विकसित देश दुनिया के अल्प - विकसित और अविकसित देशों की सार्वजनिक कल्याण के लिए मदद करते हैं, वह असोक की देन है। अंतरराष्ट्रीय जगत में सद्भावना, सहयोग और समता फैलाने के लिए असोक के प्रति विश्व सदा ऋणी रहेगा।

असोक का धम्म - मार्ग

असोक धम्म - मार्ग के राही थे। गोतम बुध के वचनों में उनकी आस्था थी। लेकिन वे दकियानूसी कर्मकांडी बौद्ध नहीं थे। इसीलिए उनके किसी भी अभिलेख में किसी दकियानूसी कर्मकांड को प्रश्रय नहीं मिला है। असोक के अभिलेखों में जो धम्म शिक्षाएँ अभिलिखित हैं, वही गोतम बुध की मूल शिक्षाएँ रहीं होंगी। बाद के दिनों में साफ - सुथरे धम्म से कर्मकांड जुड़ते गए। बौद्ध साहित्य में बड़े पैमाने पर मिलावट है, जिससे धम्म का मूल स्वरूप दब - सा गया है। असोक के अभिलेख गौतम बुद्ध के काल से सर्वाधिक निकट हैं और शिलाओं पर अंकित होने के कारण उनमें मिलावट भी संभव नहीं है। इसलिए बौद्ध शिक्षाओं का मूल स्वरूप हमें काफी हद तक असोक के शिलालेखों में देखने को मिलते हैं।

भाब्रु के लघु शिलालेख में असोक ने लिखवाए हैं कि बुध, धम्म और संघ में मेरी आस्था है। ये भी लिखा है कि भगवान बुध ने जो कहे हैं, वे सब सुभाषित हैं। यही कारण है कि असोक ने अभिषेक के 10 वें वर्ष में संबोधि की यात्रा की। तब बौद्ध गया का नाम संबोधि था। फिर वे 20 वें वर्ष में लुंमिनि गए। अपनी इन दोनों यात्राओं के बीच में अपने अभिषेक के 14 वें वर्ष में नेपाल की तराई में मौजूद निग्लीवा में जाकर उन्होंने कोणागमन बुध के स्तूप के आकार को संवर्धित कराए। निग्लीवा और लुंमिनि में स्तंभलेख खड़े किए गए। असोक के लघु स्तंभलेख बौद्ध - केंद्रों पर गाड़े गए हैं।

चीनी यात्री फाहियान ने असोक को 84000 स्तूपों का निर्माता बताए हैं। इत्सिंग ने तो असोक की एक मूर्ति भिक्खु वेश में देखे थे। कहा जाता है कि असोक ने पाटलिपुत्र में तीसरी संगीति का आयोजन किए थे। बौद्ध प्रचारकों की टोलियाँ बनाई थीं। टोलियाँ बनाकर देश और देश से बाहर भेजे थे। लंका में खुद असोक की लड़की संघमित्ता और पुत्र महिंद गए थे। इसके पुरातात्विक प्रमाण भी मिलते हैं। असोक के इन दोनों पुत्र - पुत्री का निर्वाण वहीं हुआ, जन्मभूमि पर आने की लालसा धरी की धरी रह गई।

असोक की जो कलाकृतियाँ हैं, उनमें बौद्ध धम्म झलक मारती है। बराबर की गुफाओं के द्वार पीपल के पत्तों की आकृति में हैं। असोक स्तंभों के शीर्ष पर बनी मूर्तियाँ तथा चौकी पर बनी आकृतियाँ धम्म के प्रतीकों से आप्लावित हैं। सारनाथ, साँची और कौशांबी के लघु स्तंभों पर उत्कीर्ण कराए गए अभिलेखों से असोक की छवि बौद्ध धम्म के रक्षक के रूप में उभरती है।

उपदेश से अधिक प्रभावशाली उदाहरण होते हैं। असोक ने धम्म मार्ग पर चलने का मिसाल प्रस्तुत किए। अहिंसा, प्रेम और करुणा के सिद्धांत को उन्होंने अपने जीवन में उतारा। विहार - यात्राएँ रोक दी गईं। नया सबेरा हुआ और धम्म - यात्राएँ आरंभ हुईं। धम्म सावन आरंभ हुआ, धम्म मंगल आरंभ हुआ, धम्म दान आरंभ हुआ और यहाँ तक कि विदेशों में धम्म विजय भी आरंभ हुई।

असोक ने सिर्फ मानवाधिकार की बात नहीं, बल्कि जीव - संरक्षण तक की बात चलाई थी। स्तंभलेख - 5 में कुछ पशुओं तथा पक्षियों के संरक्षण की घोषणा की है। उनका सिद्धांत यह था कि किसी जीव को दूसरे जीव को अपना आहार नहीं बनाना चाहिए। लिखवाए कि जीवेन जीवे नो पुसितविये - यहीं से जियो और जीने दो का सिद्धांत तैयार हुआ है।

असोक के कई लघु शिलालेखों में छोटे और बड़े के बीच समानता की बात कही गई है। अवसर की समानता का यदि कहीं भारत में लिखित सबूत मिलता है तो वे असोक के शिलालेख हैं। असोक - राज में दंड - विधान समान था। व्यवहार की भी समानता थी और सभी पर बगैर भेदभाव के एक ही कानून लागू था। भारत में असोक ने दंड समता और व्यवहार समता का मिसाल पेश किए। यही सब धम्म के व्यावहारिक पहलू हैं।

बावजूद इसके असोक ने कभी भी धार्मिक संकीर्णता का परिचय नहीं दिए। उनके 12 वें शिलालेख में लिखित है कि लोग मौके - बेमौके अपने संप्रदाय का आदर तथा दूसरे के संप्रदाय की निंदा न करें। मनुष्यों को दूसरे संप्रदायों का भी आदर करना चाहिए। ऐसा करने से अपने संप्रदाय की उन्नति तथा दूसरे के संप्रदाय का उपकार होता है। सब संप्रदायों के लोग आपस में सहिष्णुता और प्रेम से रहें, ऐसी शिक्षा देने के लिए

उन्होंने धम्म महामात्र नियुक्त किए थे। वास्तव में बगैर किसी स्वार्थ के धम्म के प्रचार का यह पहला उदाहरण है और इसका दूसरा उदाहरण अभी तक इतिहास में उपस्थित नहीं हुआ है।

विश्व इतिहास में असोक के समान योद्धा एवं कुशल प्रशासक अनेक हुए लेकिन असोक अपने जनहितकारी कार्यों के लिए ही सर्वाधिक प्रसिद्ध हैं और इस क्षेत्र में उनकी जोड़ी का कोई दूसरा शासक मिलना कठिन है, जिनकी उदार दृष्टि में संपूर्ण मानव समाज ही नहीं, अपितु सभी प्राणी समान थे। असोक के जनहितकारी कार्य उनके धम्म - मार्गी होने के प्रतिबिंब हैं।

असोक ने धम्म का व्यावहारिक रूप दिए। सातवें स्तंभलेख में लिखा है कि मैंने मार्गों पर वट वृक्ष लगवाए हैं। उनसे मनुष्यों और पशुओं को छाया मिलेगी। मैंने आमों के बाग लगवाए हैं। प्रत्येक आठ कोस पर मैंने कुएँ खुदवाए हैं और विश्राम - गृह बनवाए हैं। मनुष्यों और पशुओं के सुख के लिए मैंने जगह - जगह पर प्याऊ लगवाए हैं।

दूसरा शिलालेख भी असोक के लोक - कल्याणकारी कार्यों की गवाही देता है। उन्होंने राज्य के सभी स्थानों पर तथा उसके सीमांत राज्य जैसे चोड, पाण्ड्य, सतियपुत्त, केरलपुत्त तथा ताम्रपर्णि एवं यवन राजा अंतियोक और उस यवन राजा अंतियोक के निकट जो राज्य हैं, सभी स्थानों पर मनुष्य चिकित्सा और पशु चिकित्सा दोनों स्थापित किए। इतना ही नहीं, वे औषधियाँ जो मनुष्य और पशु के लिए उपयोगी हैं, जहाँ - जहाँ नहीं हैं, सर्वत्र लाई और लगाई गईं। जहाँ - जहाँ मूल तथा फल नहीं हैं, सर्वत्र लाए और लगाए गए। मार्गों में मनुष्यों और पशुओं के लिए कुएँ खुदवाए गए तथा वृक्ष लगवाए गए। पशुओं के लिए चिकित्सालय बनवाने वाले वे संभवतः विश्व के प्रथम सम्राट हैं।

यूनान के जिस सिकंदर ने हमारे पंजाब में खून की होली खेली थी, उसी सिकंदर के ध्वंस - साम्राज्य में यूनानी राजाओं को सम्राट असोक ने बस दो ही पीढ़ी बाद दवाइयाँ बँटवाई थी। तब साम्राज्य के बाहर धम्म की धमक छः सौ योजन में थी।

असोक ने धम्म की राह चलकर बहुत सारे सुधार किए। प्राचीन भारत में जानवरों को लड़ाकर तमाशा देखने का व्यसन था। सम्राट ने उन्हें बंद करा दिए। जो पशु - पक्षी विनोद के लिए मारे जाते थे, उनकी हत्या रोक दी गई। शिकार करने की विहार - यात्राएँ प्रतिबंधित कर दी गईं। नौकरों तक के साथ समानता का व्यवहार करने की ताकीद दी गई। उन्होंने ऐसे तड़क - भड़क वाले सामाजिक समारोहों पर भी रोक लगा दिए, जिनमें लोग रंगरेलियाँ मनाते थे।

असोक अपनी धम्म नीति पर कायम रहे, यद्यपि कि उनके पास पर्याप्त साधन - संपदा थी और विशाल सेना थी। कलिंग - विजय के बाद उन्होंने कोई युद्ध नहीं किए। इस अर्थ में वे अपने समय और अपनी पीढ़ी से बहुत आगे थे। सम्राट असोक की मानववादी सेवाएँ विश्व इतिहास में अपनी सानी नहीं रखती। उन्होंने एशिया, अफ्रीका और यूरोप तक अपने धम्म संदेश फैलाए। असोक - राज इस बात का प्रमाण है कि राज भी अहिंसक हो सकता है।

असोक और उनकी कलाएँ

सम्राट असोक ने अपने पितामह द्वारा निर्मित पाटलिपुत्र के राजमहल को इतना भव्य और आकर्षक बना दिए थे कि उसे देखकर फाहियान ने कहा था कि ऐसा अब इस लोक के लोग नहीं बना सकते हैं। उन्होंने लिखा कि पाटलिपुत्र नगर में सम्राट असोक का राजप्रासाद और सभा भवन हैं। सब असुरों के बनाए हैं। पत्थर चुनकर दीवार और द्वार बनाए गए हैं। सुंदर खुदाई और पच्चीकारी है। अब तक वैसे ही है। असोक से कोई पाँच सौ साल बाद फाहियान पटना आए थे। आश्चर्य होता है कि पाँच सौ साल बाद भी असोक के राजप्रासाद और सभा भवन जस का तस थे। असोक ने सब पत्थर में तब्दील कर दिए थे।

सम्राट असोक के स्तंभ और शिलालेख देश के कोने - कोने में बिखरे पड़े हैं। असोक के स्तंभ कारीगरी के अनोखे नमूने हैं। चालीस - पचास फीट ऊँचा एक ही पत्थर के बने हुए जिनकी चिकनाई से प्रत्येक युग के वासी चकित होते आए हैं। पत्थर के स्तंभों पर शानदार चमक है। ऐसी कि धातु के होने का भ्रम होता है। पहला भ्रम अंग्रेज यात्री टॉम कोरिएट को हुआ था। वे 17 वीं सदी के मुगल काल में भारत आए थे। टोपरा - दिल्ली स्तंभ देखा और लिखा कि पीतल की परत चढ़ा स्तंभ है। पीतल का भ्रम विटेकर को भी हुआ था। चेपलिन फेरी को तो संगमरमर का भ्रम हुआ था। 19 वीं सदी के आरंभ में आए बिशप हैबर को भी भ्रम हुआ और लिखा कि यह ढली हुई धातु का है। अजीब इंजीनियरिंग थी। जब फिरोजशाह तुगलक इसे दिल्ली लाए थे, तब इसे खींचने के लिए 42 पहिए की गाड़ी बनी थी, वो भी इसे कोई डेढ़ सौ मील दूर ले जाना था। सोचिए कि असोक के इंजीनियरों ने इसे कैसे चुनार से टोपरा भेजे होंगे। अचरज होता है।

सारनाथ स्तंभ पर सिंहों की जैसी शक्ति का प्रदर्शन है, उनकी फूली हुई नसों में जैसी स्वाभाविकता है, वह न केवल इस देश के लिए बल्कि समस्त संसार के मूर्ति विन्यास में अप्रतिम है। (चित्र 10)

न केवल सिंह, बल्कि असोक कालीन बैल और हाथी से लेकर यक्ष - यक्षिणी की जो भी मूर्तियाँ मिलती हैं, वे अनुपम हैं। धौली का हाथी मूर्ति कला का उत्कृष्ट नमूना है। एक चट्टान को तराश कर हाथी का अग्र भाग बनाया गया है। हाथी का उन्नत भाल, विशाल गतिशील कान, लचीली सूँड़ और सशक्त पाँव अचानक से मन को बाँध लेते हैं। (चित्र 11)

ऐसा कहा जाता है कि असोक ने 84000 स्तूप बनवाए थे। असोक द्वारा 84000 स्तूप बनवाए जाने का जिक्र फाहियान ने अपने यात्रा - वृत्तांत के 27 वें खंड में किए हैं। आश्चर्य क्यों? 12 हजार बुध की मूर्तियाँ तो हांगकांग के शा टिन के एक बौद्ध मठ में हैं। इसका नाम दस हजार बुध मठ है, लेकिन वहाँ बुध की मूर्तियों की संख्या 12000 है। इसे यूट काई ने 1951 में स्थापित किए थे और 6 साल बाद 1957 में पूरा हुआ। एक आदमी ने 12000 बनवाए, यदि राजा चाहे तो 84000 क्यों नहीं बनवा सकता है। आश्चर्य क्यों?

साँची और भरहुत के स्तूपों के मूल सर्जक असोक ही हैं। बाद में इनका विकास हुआ है। असोक द्वारा बनवाए गए अनेक स्तूप नष्ट हो गए हैं। अनेक का पता लगाया जाना बाकी है। किंतु चीनी यात्रियों ने असोक के बनवाए अनेक स्तूप देखे थे। चीनी यात्री ह्वेनसांग 7 वीं सदी में सिरपुर आए थे। तब उन्हें मालूम हुआ कि वहाँ पर राजा असोक द्वारा बनवाया गया बौद्ध स्तूप है। ह्वेनसांग ने दिशा सहित इस स्तूप का वर्णन किए हैं। चीनी यात्री की बात सच साबित हुई। ह्वेनसांग की बताई गई दूरी और दिशा में सिरपुर का स्तूप भग्नावस्था में 2009 के जनवरी माह में मिल गया। खुद कनिंघम ने भी चीनी यात्रियों के बताए गए रास्ते चलकर अनेक स्तूपों की खोज की।

उज्जैन के पास 1938 - 39 में वैश्य टेकरी के स्तूप की खुदाई हुई थी। तब वहाँ से मौर्य कालीन ईंटें, सिक्के और ताँबे की बनी हुईं चूड़ियाँ मिली थीं। वैश्य टेकरी स्तूप की सामग्री इसे मौर्य काल का स्तूप होने का प्रमाण प्रस्तुत करती हैं। सारनाथ और तक्षशिला के स्तूप भी असोक के बनवाए हैं। बुतकारा स्तूप के पहले लेयर को भी असोक ने बनवाए थे। दूसरे लेयर को मीनाण्डर ने बनवाए हैं। इसीलिए दूसरे लेयर से मीनाण्डर के सिक्के मिले हैं।

मौर्य काल में पहाड़ों को काटकर गुहा बनाने की एक नवीन शैली का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका जन्मदाता असोक थे। असोक के समय की बनी हुईं बराबर पहाड़ी की गुफाओं में सुदामा गुफा तथा कर्ण चौपाल प्रसिद्ध हैं। प्रथम का निर्माण असोक ने अपने अभिषेक के 12 वें वर्ष में तथा दूसरे का 19 वें वर्ष में करवाए थे। बाद में लोगों ने इन गुफाओं के नाम बदल दिए हैं और पौराणिक नाम दे दिए हैं। असोक के जमाने में गुफा को कुभा कहा जाता था। तब बराबर पहाड़ी का नाम खलतिक पर्वत था। सब कुछ आज बदल गया है। लेकिन आश्चर्य कि जिस गुफा का नाम खुद खुदवाने वाले असोक ने निगोह कुभा रखे हैं, उसका भी नाम लोगों ने बदलकर पौराणिक पात्रों के नाम पर रख दिए हैं। (चित्र 12)

श्रमणों की जिंदगी को मौत के पंजों से मुक्त कर उन्हें अमर बनाने के लिए सम्राट असोक ने पहाड़ की छाती को चीरकर वास्तुकला के इतिहास में पहली बार गुहा - निर्माण की एक नई शैली चलाई थी जो बाद में अजंता, एलोरा, नासिक, जुन्नार जैसी जगहों पर विकसित हुई। पत्थरों को जोड़ कर घर बनाने से पहाड़ों को काटकर घर बनाना बेहद पेचीदा है, ऐसा पेचीदा कि मध्य काल और आधुनिक काल में किसी राजा ने ऐसा दुस्साहस नहीं किए। इन गुफाओं की दीवारों तथा छतों पर शीशे के समान चमकीली पॉलिश है, ऐसी पॉलिश जो आज भी रहस्य बना हुआ है।

राजवंशों के इतिहास में प्राचीन भारत में कला का इतिहास वास्तव में असोक से आरंभ होता है। वो असोक थे, जिन्होंने भवन - निर्माण में लकड़ी की जगह पत्थर का प्रयोग आरंभ किए।

असोक ने न सिर्फ भवन - निर्माण के क्षेत्र में नए प्रयोग आरंभ किए बल्कि अनेक नगरों की स्थापना भी की। उन्होंने ही काश्मीर में सिरिनगर तथा नेपाल में ललितपट्टन की स्थापना की थी।

असोक की कलाएँ निःसंदेह भारतीय संस्कृति की अनुपम संपत्ति हैं। पाषाणों के प्रयोग ने असोक - कला को स्थायी रूप प्रदान किया। लेखन कला भी अद्‌भुत थी। बाईस सौ साल पहले का लिखा हुआ शिलालेख आज भी अपनी चमक बनाए हुए हैं। सही अर्थों में सम्राट असोक प्रथम राष्ट्रीय शासक थे, जिन्होंने पूरे राष्ट्र को एक भाषा और लिपि

देकर एकता के सूत्र में बाँध दिए। स्वतंत्रत भारत ने सारनाथ स्तंभ के सिंह - शीर्ष को अपने राजचिह्न के रूप में ग्रहण कर मानवता के इस महान नायक के प्रति अपनी सच्ची श्रद्धांजलि अर्पित की है।

बौद्ध चीनी यात्री और असोक

फाहियान ने अपने यात्रा - वृत्तान्त में प्रसंगवश सम्राट असोक का जिक्र किए हैं। सम्राट असोक द्वारा बनवाए गए अनेक स्तूपों एवं स्तंभों की जानकारी हमें इस यात्रा-वृत्तांत से प्राप्त होती है। फाहियान के यात्रा - वृत्तान्त में असोक का पहला जिक्र तब आया है, जब वे गांधार जनपद पहुँचते हैं। वे बताते हैं कि यहाँ कभी सम्राट असोक के राजकुमार धर्मवर्द्धन का शासन था।

फाहियान जब मथुरा से 18 योजन चलकर संकिसा पहुँचते हैं, तब वे लिखते हैं कि यहाँ पर सम्राट असोक के बनवाए " आरोह विहार " है। विहार के पीछे तीस हाथ ऊँचा असोक - स्तंभ है। शीर्ष पर सिंह की मूर्ति है। दुर्भाग्य से यह असोक - स्तंभ अभी तक नहीं मिला है। एक दूसरे असोक - स्तंभ का शीर्ष यहाँ से मिलता है, जिस पर हाथी की मूर्ति बनी है। कनिंघम ने अपनी कृति " दी एन्शिएंट जियोग्राफी आॅफ इंडिया " में संकिसा का विस्तार से वर्णन किए हैं।

संकिसा में असोक द्वारा बनवाए गए एक स्तूप का भी जिक्र है। वर्तमान समय में वह ईंटों का ढेर बन गया है। संकिसा वस्तुतः साकमुनिसा (शाक्यमुनि) का अपभ्रंश जान पड़ता है। अभी हाल ही में यहाँ से अनेक बौद्ध अवशेष मिले हैं।

फाहियान ने श्रावस्ती के प्रसंग में लिखा है कि जेतवन विहार के पूरबी द्वार पर दो धम्म - स्तंभ हैं। बाएँ धम्म - स्तंभ पर चक्र है और दाएँ धम्म - स्तंभ पर वृषभ की आकृति है। जाहिर है कि श्रावस्ती में सम्राट असोक के दो स्तंभ थे, जिनकी पुष्टि बाद में चलकर ह्वेनसांग ने की है।

फाहियान ने रामग्राम में सम्राट असोक के आने का उल्लेख किए हैं। वे रामस्तूप से भगवान बुध की शरीर - धातु लेने के सिलसिले में आए थे, लेकिन सफल नहीं हो सके।

कुशीनगर से फाहियान 12 योजन चलकर वहाँ पहुँचते हैं, जहाँ से लिच्छवि लोगों को बुध ने महापरिनिर्वाण स्थल की ओर आने से लौटा दिए थे। फाहियान ने इस स्थल पर एक असोक - स्तंभ का जिक्र किए हैं, जिसका पता नहीं चल सका है।

पाटलिपुत्र पहँचने पर फाहियान नगर में मौजूद सम्राट असोक के प्रासाद और सभाभवन का उल्लेख करते हैं। लिखते हैं कि सब असुरों के बनाए हैं। पत्थर चुनकर दीवार और द्वार बनवाए गए हैं। सुंदर खुदाई और पच्चीकारी है। ऐसा अब इस लोक के लोग नहीं बना सकते। फिर वे असोक के छोटे भाई का जिक्र करते हैं।

फाहियान के विवरण से पता चलता है कि असोक ने पटना से दक्षिण कोई 3 ली की दूरी पर पहला महास्तूप बनवाए थे। महास्तूप के दक्षिण में असोक - स्तंभ है, जिसकी ऊँचाई 30 हाथ से अधिक है। पास में असोक ने नेले नगर बसाए हैं। नेले नगर में भी असोक - स्तंभ है। स्तंभ की ऊँचाई 30 हाथ से अधिक है। शीर्ष पर हाथी की मूर्ति बनी हुई है। कुल मिलाकर 6 असोक - स्तंभ फाहियान ने देखे थे।

ह्वेनसांग ने सम्राट असोक का पहला जिक्र कपिसा राज्य के भ्रमण के दौरान किए हैं। बताए हैं कि नगर के पश्चिम - दक्षिण में एक पहाड़ पीलुसार है। पहाड़ के ऊपर चट्टान का एक टीला है, उसी टीले पर सम्राट असोक के बनवाए 100 फीट ऊँचा स्तूप है।

फिर ह्वेनसांग नगरहार में सम्राट असोक निर्मित 300 फीट ऊँचा स्तूप देखते हैं। बनावट अद्भुत है। पत्थरों पर उत्तम कारीगरी है। पुष्कलावती के पूरब में भी ह्वेनसांग सम्राट असोक निर्मित स्तूप देखते हैं। नगर के उत्तर दिशा में भी 4 - 5 ली की दूरी पर असोक निर्मित कई सौ फीट ऊँचा स्तूप वे देखते हैं। स्तूप पर उत्तम नक्काशी है।

पोलुश नगर के पूरबी द्वार के बाहर मौजूद एक संघाराम के पास असोक के बनवाए स्तूप है। पोलुश नगर की पूर्वोत्तर दिशा में भी लगभग 20 ली की दूरी पर पहाड़ की चोटी पर असोक निर्मित स्तूप है। ह्वेनसांग ने उल्लेख किए हैं कि उद्यान देश में मोसू संघाराम है। मोसू संघाराम के पश्चिम की ओर 60 -70 ली पर असोक के बनवाए स्तूप है। मुंगाली नगर के पश्चिम 50 ली की दूरी पर 50 फीट ऊँचा रोहितक स्तूप है। इसे असोक ने बनवाए हैं।

तक्षशिला राज्य में ह्वेनसांग ने असोक निर्मित तीन स्तूपों का जिक्र किए हैं। सिंहपुर राज्य में भी ह्वेनसांग ने असोक के बनवाए तीन स्तूपों का वर्णन किए हैं। वे उरश राज्य की राजधानी के पास भी 200 फीट ऊँचा स्तूप देखते हैं, जिसे असोक ने बनवाए थे।

ह्वेनसांग ने कश्मीर राज्य में सम्राट असोक द्वारा बनवाए गए 4 स्तूपों का और टक्का राज्य में 2 स्तूपों का जिक्र किए हैं। चीनापटी, कुलूट तथा शतद्रू में असोक निर्मित एक - एक स्तूप का उल्लेख है। मथुरा में तीन स्तूप असोक के बनवाए हुए हैं। ह्वेनसांग के यात्रा - वृत्तांत में स्थानेश्वर तथा स्त्रुघ्न में भी असोक के बनवाए स्तूपों की चर्चा है। गोविशन, अहिच्छत्र तथा वीरासन में एक - एक असोक निर्मित स्तूप का जिक्र है।

वे संकिसा पहुँच कर असोक - स्तंभ का जिक्र करते हैं। इसे फाहियान ने भी देखे थे। संकिसा का असोक - स्तंभ 70 फीट ऊँचा है, बैंगनी चमकदार है तथा मसाला लगा है। शीर्ष पर सिंह है जो अपने पुट्ठों के बल बैठा है।

कन्नौज के पश्चिमोत्तर और दक्षिण - पूरब दिशा में असोक निर्मित एक - एक स्तूप हैं। असोक का बनवाया हुआ एक स्तूप नवदेवकुल के पास भी है। ओयूटो तथा हयमुख राज्य में भी असोक निर्मित स्तूप हैं। ह्वेनसांग ने कौशांबी में दो और विशाखा राज्य में एक असोक निर्मित स्तूप का जिक्र किए हैं।

फाहियान की भाँति ह्वेनसांग ने भी जेतवन विहार के पूरबी दरवाजे पर दाएँ और बाएँ 70 फीट ऊँचे असोक - स्तंभ का उल्लेख किए हैं। बाएँ के शीर्ष पर धम्म चक्र और दाएँ के शीर्ष पर वृषभ की आकृति बनी है। एक 20 फीट ऊँचा असोक - स्तंभ का जिक्र कपिलवस्तु राज्य में आया है। इस पर बुध के महापरिनिर्वाण का वृत्तांत अंकित है। लुंमिनि वन में भी एक स्तूप असोक निर्मित है। स्तूप के नजदीक एक ऊँचा पाषाण - स्तंभ है। शीर्ष पर घोड़े की मूर्ति है। यहीं आज का रुम्मिनदेई स्तंभ है। सम्राट असोक वहाँ भी एक स्तूप बनवाए थे, जहाँ राजकुमार सिद्धार्थ ने बाल काट कर छन्न को दिए थे। न्यग्रोधाराम के पास भी असोक निर्मित बहुत ऊँचा एक स्तूप है।

ह्वेनसांग के समय में कुशीनगर उजाड़ हो चुका है। फिर भी नगर - द्वार के पूर्वोत्तर में असोक निर्मित स्तूप है। नगर के उत्तर - पश्चिम में जहाँ बुध का महापरिनिर्वाण हुआ

था, एक विहार है और विहार के पास सम्राट असोक का बनवाया हुआ स्तूप है। स्तूप के आगे में असोक - स्तंभ है, जिस पर महापरिनिर्वाण का इतिहास लिखा है। कुशीनगर में उस स्थान पर भी असोक का बनवाया हुआ स्तूप है, जहाँ भगवान बुध का अंतिम संस्कार किया गया था। स्तूप के सामने असोक - स्तंभ है, जिस पर घटना का वृत्तांत लिखा है।

वाराणसी में बरना नदी के पश्चिमी तट पर असोक निर्मित 100 फीट ऊँचा स्तूप है। सामने में पाषाण - स्तंभ है। स्तंभ काँच के समान स्वच्छ और चमकीला है। इस असोक - स्तंभ की पहचान लाट भैरव से की गई है। सारनाथ में भी असोक का बनवाया हुआ स्तूप है। सामने में असोक - स्तंभ है, जिसकी ऊँचाई 70 फीट है।

गाजीपुर के पश्चिमोत्तर में असोक निर्मित एक स्तूप है। मसाढ़ से वैशाली जाते भी ह्वेनसांग को एक असोक निर्मित स्तूप मिला था। स्तूप के सामने शिला - स्तंभ है। शिला - स्तंभ 20 फीट ऊँचा है। शीर्ष पर सिंह की मूर्ति है। यह असोक - स्तंभ अभी तक नहीं मिल सका है।

वैशाली में एक स्तूप सम्राट असोक का बनवाया हुआ है। सामने में असोक - स्तंभ है। स्तंभ की ऊँचाई 50 - 60 फीट है। शीर्ष पर सिंह की मूर्ति है। श्वेतपुर संघाराम के निकट भी असोक निर्मित स्तूप है। वज्जी से नेपाल के रास्ते में भी ह्वेनसांग को असोक निर्मित स्तूप मिला था।

पटना में राजभवन के उत्तर एक असोक - स्तंभ बीसियों फीट ऊँचा है। चौरासी हजार स्तूपों में से पहला स्तूप सम्राट असोक ने पाटलिपुत्र में बनवाए थे। राजभवन के निकट ही एक दूसरा पाषाण - स्तंभ खड़ा है। लेख मिटा हुआ है। अफसोस कि पटना के ये दोनों असोक - स्तंभ अभी तक नहीं मिल सके हैं। राजधानी में सम्राट असोक ने 5 विशाल स्तूप भी बनवाए हैं। नगर के बाहर दक्षिण - पूरब में कुक्कुटाराम संघाराम भी असोक निर्मित है। संघाराम के निकट असोक ने आमलक स्तूप बनवाए हैं।

गया पर्वत पर भी असोक के बनवाए 100 फीट ऊँचा स्तूप है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि असोक ने अपने शासन काल में संबोधि स्थल की हर जगह जहाँ - जहाँ बुध गए थे,

खोज कराई थी और सब स्थानों पर स्तूप और स्तंभ लगवाए थे। बोधिवृक्ष के पूरब में असोक ने एक छोटा विहार बनवाए थे। बोधिवृक्ष के दक्षिण में थोड़ी दूर पर 100 फीट ऊँचा स्तूप सम्राट असोक का बनवाया हुआ है। एक पाषाण - स्तंभ सुजाता स्तूप के सामने है। दूसरा पाषाण - स्तंभ मोहो (मोहन) नदी के पार के जंगल में है। यष्टिवन में भी असोक के बनवाए स्तूप है।

सप्तपर्णी गुफा से 20 ली पश्चिम दिशा में सम्राट असोक के बनवाए स्तूप है। करण्ड ह्रद के पश्चिमोत्तर में भी 60 फीट ऊँचा असोक निर्मित स्तूप है। स्तूप के पास असोक - स्तंभ है, जिस पर स्तूप के बनवाने का विवरण अंकित है। स्तंभ 50 फीट ऊँचा है और शीर्ष पर हाथी की मूर्ति बनी हुई है। पाषाण - स्तंभ के पूर्वोत्तर में थोड़ी दूर पर राजगीर है।

नालंदा के पास कुलिक ग्राम में सम्राट असोक का बनवाया हुआ स्तूप है। यहीं मोग्गल्लान का जन्म हुआ था। कालपिनाक नगर में भी सम्राट असोक के बनवाए स्तूप है।

भारत के पूरब स्थित पुंड्रवर्द्धन, समतट, ताम्रलिप्ति एवं कर्णसुवर्ण में सम्राट असोक निर्मित स्तूप हैं। उद्र में 10 स्तूपों के निर्माण का श्रेय राजा असोक को है। कलिंग की राजधानी के दक्षिण भी 100 फीट ऊँचा एक स्तूप असोक ने बनवाए हैं। कोसल भी सम्राट असोक के बनवाए स्तूप से अछूता नहीं है।

दक्षिण के आंध्र और चोल में असोक के बनवाए स्तूप हैं। द्रविड़ राज्य में असोक के बनवाए कई स्मारक और स्तूप हैं। मालकूट राज्य में असोक और महिंद दोनों ने स्तूप और संघाराम बनवाए हैं। कोंकणपुर एवं महाराष्ट्र में भी असोक निर्मित स्तूप मौजूद हैं। वलभी भी अपवाद नहीं है। सिंध में सम्राट असोक ने बीसों स्तूप बनवाए हैं। पर्वत राज्य में कोई 4 स्तूप असोक के बनवाए हुए हैं। पिता शिला एवं ओफनच में भी ह्वेनसांग ने असोक निर्मित स्तूपों की चर्चा की है। सुकुच राज्य में तो कोई 10 स्तूप असोक के बनवाए हुए हैं।

चीनी यात्रियों द्वारा दी गईं जानकारियाँ आज भी इतिहासकारों के लिए चुनौती बनी हुई हैं। अनेक स्तूपों तथा स्तंभों का जिक्र चीनी यात्रियों ने अपने यात्रा - वृत्तान्तों में किए हैं। दिशा और दूरी देकर उन्हें प्रामाणिक बनाए हैं। अनेक स्तूप और स्तंभ खोज लिए गए हैं। इनमें अनेकों की खोज चीनी यात्रियों के दिए गए विवरण के आधार हुई है। लेकिन अनेक स्तूप और स्तंभ अभी खोजा जाना बाकी है। इतिहास निरंतर खोज की प्रक्रिया है। सम्राट असोक के अभी और विहार, स्तंभ, शिलालेख तथा स्तूप सामने आएंगे और भारत का इतिहास अभी और समृद्ध होगा।

असोक का रुम्मिनदेई स्तंभलेख

असोक का रुम्मिनदेई स्तंभलेख लुंबिनी में है। लुंबिनी से रुम्मिन संबंधित है। असोक काल में इसका रूप लुंमिनि था। वर्तमान में लुंबिनी नेपाल के रूपनदेहि जिले में पड़ता है। प्राचीन काल में यह स्थान कपिलवस्तु राज्य में पड़ता था। बुध के समय में कपिलवस्तु के पूरब में लुंबिनी स्थित था।

लुंमिनि ही गोतम बुध की माँ का वास्तविक नाम था और महामाया नाम बाद का है। बुध का सिद्धार्थ नाम बाद का है और पहले का नाम सुकिति है। बुध की पत्नी का यशोधरा नाम बाद का है और पहले का नाम कच्चाना है। महामाया, सिद्धार्थ और यशोधरा जैसे नाम बुध की जीवनी में तब जुड़े, जब संस्कृत का आगमन हुआ। बुध के समय में संस्कृत भाषा नहीं थी। इसलिए हमें महामाया, सिद्धार्थ और यशोधरा जैसे संस्कृत नामों की उम्मीद बुध के समय में नहीं करनी चाहिए।

असोक के अभिलेख पर जो " लुंमिनि " लिखा है, फाहियान ने उसे " लुंमिन " कहा है और ह्वेनसांग ने " ला - फा - नी " उच्चरित किया है, वही वर्तमान में " रुम्मिन " है। लुंमिनि बुध की माँ का नाम था और वन में जहाँ बुध जन्म लिए थे, उस स्थान का नाम उनकी माँ के नाम के आधार पर लुंबिनी पड़ा।

लुंमिनि, लुंबिनी, रुम्मिन आदि एक ही शब्द के परिवर्तित रूप हैं। वर्तमान में बुध की माँ लुंमिनि की पूजा रुम्मिन (देई) के नाम से वहाँ की जाती है। देई वस्तुतः देवी का बोधक है। यही पर असोक का रुम्मिनदेई स्तंभलेख है, जो बुध के जन्म - स्थान को प्रमाणित करता है।

स्तंभलेख से कुछ कदमों पर पूजा- स्थल है। पूजा - स्थल पर बुध की जन्मकथा को संजोए हुए तीन परिचारिकाओं के साथ रुम्मिन देई की मूर्ति है।

रुम्मिन देई की मूर्ति जीर्ण - शीर्ण है। यह मूर्ति बुध की जन्मकथा का प्रतिनिधित्व करती है। मूर्ति में सबसे दाहिने रुम्मिन देई की मूर्ति है। रुम्मिन देई अपने दाहिने हाथ से शाल वृक्ष की शाखाओं को पकड़ी हुई हैं। मूर्ति के बाएँ तीन परिचारिकाएँ हैं। (चित्र 13)

मूर्ति असोक काल की है। मूर्ति में जो पीलापन लिए पत्थर लगे हैं, वहीं पत्थर असोक के रुम्मिनदेई स्तंभ में भी है।

रुम्मिन देई की विशेष पूजा नेपाली महीने के बैसाख में पूर्णिमा के दिन की जाती है। सभी सबूत बताते हैं कि वर्तमान की रुम्मिन देई (देवी) ही असोक काल की लुंमिनि है, वही बुध की माँ का वास्तविक नाम है तथा लुंमिनि के नाम पर ही असोक काल में उस गाँव का नाम भी लुंमिनि गाम पड़ा, जो अभिलेख पर अंकित है।

प्राचीन काल में लुंबिनी की खोज सम्राट असोक ने करवाई थी। बोध गया के संदर्भ में ह्वेनसांग ने लिखा है कि सम्राट असोक ने वे सभी स्थल खोजवाए थे जो बुध से संबंधित थे। फिर उन्होंने बुध से संबंधित स्थलों पर स्तूप बनवाए थे और स्तंभ लगवाए थे। ऐसा उन्होंने बौद्ध - स्थलों को इतिहास में अमर बनाने के लिए किए थे। बुध के जन्म - स्थल को भी अमर बनाने के लिए वे अपने अभिषेक के 20 वर्ष बाद लुंबिनी गए थे। वहाँ पर उन्होंने रुम्मिनदेई स्तंभ स्थापित कराए तथा उस पर अभिलेख लिखवाए।

चीनी यात्री फाहियान ने लिखा है कि कपिलवस्तु नगर के पूरब में 50 ली पर राजा का बाग है। बाग का नाम लुंबिनी वन है। यही भगवान बुध का जन्म हुआ था। ह्वेनसांग ने कपिलवस्तु का वर्णन करते हुए लिखा है कि राज्य का क्षेत्रफल 4000 ली है। 10 नगर हैं। सभी उजाड़ और बरबाद हैं। उन्होंने लुंबिनी का जिक्र करते हुए लिखा है कि सरकूप के उत्तर - पश्चिम लगभग 80 या 90 ली चलकर हम लुंबिनी वन में गए। वहाँ ऊँचा पत्थर का स्तंभ है, जिसके ऊपर घोड़े की मूर्ति बनी है। आज की तारीख में यही असोक का रुम्मिनदेई स्तंभ है। लेकिन ह्वेनसांग ने उस पर अभिलेख लिखे होने का जिक्र नहीं किए हैं। संभावना है कि तब स्तंभ का अभिलेख वाला भाग जमीन में दबा हो और शीर्ष वाला भाग जमीन पर गिरा हुआ हो। कारण कि ह्वेनसांग ने लिखा है कि स्तंभ बीच से टूट कर गिर गया था।

आधुनिक काल में अलोइस एन्टन फीहरर (1853 - 1930) ने 1896 में इसकी खोज की थी। लेकिन विंसेंट स्मिथ ने लिखा है कि बारह साल पहले 1884 में एक भू - स्वामी ने मुझे इसकी जानकारी दी थी। खैर, खोज तो फीहरर के नाम ही रहेगी। सिंधु घाटी सभ्यता की ईंटों की जानकारी ठेकेदारों को थी। मजदूरों को भी जानकारी थी। फिर भी खोज का श्रेय उन्हें नहीं दिया जा सकता है। इसलिए कि उनके लिए वो सभ्यता कोई सभ्यता नहीं बल्कि ईंटों का ढेर था। फीहरर की मदद करने वालों में नेपाल के जनरल खड़ग शमशेर जंगबहादुर राणा (1861 - 1921) थे। उन्हें उस स्थान की जानकारी थी।

जैसा कि हम जानते हैं कि इस स्तंभलेख पर राजा रिपु मल्ल का भी अभिलेख है। रिपु मल्ल खस मल्ल राजवंश (11 - 14 वीं सदी) के शासक थे। पश्चिम नेपाल के राजा रिपु दमन मल्ल ने 1312 में इसी स्तंभ के ऊपरी हिस्से पर नाम सहित ओम मणि पद्मे हूम लिखवाए हैं।राजा रिपु मल्ल द्वारा बौद्ध मंत्र लिखवाए जाने का मतलब हुआ कि 14 वीं सदी में लोगों को ये पता था कि स्तंभ बुध से संबंधित है। ऐसे भी स्तंभ के आस-पास अनेक बौद्ध मठों के अवशेष मिले हैं। ये अवशेष तीसरी सदी ईसा पूर्व से लेकर छठी- सातवीं सदी तक के हैं। अब तो नई खुदाई में छठी सदी ईसा पूर्व की भी इमारती लकड़ी के अवशेष मिले हैं।

जर्मन पुरातत्ववेत्ता फीहरर ने भगवान बुध के जन्म - स्थल की पुरातात्विक खोज कर भारतीय इतिहास को नया आयाम दिए थे। ठीक इसके पिछले साल 1895 में उन्होंने निग्लीवा स्तंभलेख का पता लगाए थे। निग्लीवा स्तंभलेख कई मायने में रुम्मिनदेई स्तंभलेख से मेल खाता है। बुधिज्म के इतिहास में ये दोनों अभिलेख मील के पत्थर हैं। निग्लीवा स्तंभलेख से हमें गोतम बुध से पहले के कोणागमन बुध का पता चलता है।

फीहरर पर आरोप लगाया गया था कि वे पुरातात्विक सबूतों के साथ छेड़छाड़ कर रहे हैं। उन्हें छेड़छाड़ में संलिप्त होने के कारण नौकरी से 1898 में हटा भी दिया गया था। लेकिन 2013 में महामाया देवी मंदिर की खुदाई हुई है। खुदाई का नेतृत्व ब्रिटेन की डरहम यूनिवर्सिटी के रॉबिन कॉनिंगहम कर रहे थे। उन्होंने बताए हैं कि मंदिर के

नीचे बुद्ध कालीन इमारती लकड़ी के ढाँचे के अवशेष मिले हैं। इससे साबित होता है कि फीहरर ने सटीक स्थल की खोज की थी।

असोक का अभिलेख स्तंभ के निचले भाग में है। यह मिट्टी में दबा हुआ था। बाद में इसे खोजा गया। अभिलेख पाँच पंक्तियों में है। इसमें कुल मिलाकर 90 अक्षर हैं। यह अभिलेख प्राकृत भाषा तथा धम्म लिपि में उत्कीर्ण है। इस अभिलेख के दो शब्दों पर अर्थ को लेकर विवाद है। पहला " सिलाविगडभीचा " और दूसरा " अठभागिए " है।

हुल्श की पुस्तक में सिलाविगडभीचा में " विगड " का अर्थ अश्व किया गया है और बताया गया है कि इसका मतलब अश्व धारण करती हुई शिला (पत्थर) है। ऐसा जान पड़ता है कि यह अर्थ ह्वेनसांग से प्रेरित है। ह्वेनसांग ने लिखा है कि स्तंभ के शीर्ष पर घोड़े की मूर्ति बनी हुई है। ब्यूलर ने इसका अर्थ " सूर्य चिह्न से अंकित शिला " किए हैं।

मगर अनेक विद्वानों ने इसका अर्थ " पत्थर की सुदृढ़ दीवार " किए हैं। यह अर्थ सही है। विकट का पूर्व रूप विगड है। इसलिए विगड का अर्थ विकट (सुदृढ़) हुआ। भीचा का अर्थ भीत्त (दीवार) है। प्राकृत का मच्चु जैसे हिंदी में मृत्यु है, वैसे ही प्राकृत का भीचा हिंदी में भीत्त है। दोनों में " च " का परिवर्तन " त " में हुआ है। पूरे संदर्भ को जानने के लिए रुम्मिनदेई स्तंभलेख का देवनागरी लिप्यंतरण प्रस्तुत है -

1. देवान पियेन पियदसिन लाजिन वीसति वसाभिसितेन
2. अतन आगाच महीयिते हिद बुध जाते सक्यमुनी ति
3. सिला विगड भीचा कालापित सिलाथभे च उसपापिते
4. हिद भगवं जाते ति लुंमिनि गामे उबलिके कटे
5. अठभागिए च (चित्र 14)

देवान पियेन का अर्थ है - बुधप्रिय। बुध हों प्रिय जिसके, वह है देवान पियेन। देव यहाँ बुध का प्रतीक है। इसीलिए बुध को बुध देव कहा जाता है। असोक के शिलालेखों में

किसी देवी - देवता के नाम नहीं मिलते हैं। इसलिए देवताओं के प्रिय अर्थ करने से कोई संदर्भ नहीं जुड़ता है। कुछेक इतिहासकार देवान पियेन का रूप मनमानी तरीके से " देवानामपिय " कर देते हैं। देवानामपिय करने से यह संस्कृत का रूप धारण कर लेता है, जबकि यह प्राकृत भाषा में लिखा गया है।

पियदसिन का अर्थ है - प्रियदर्शी। प्रिय देखने वाला पियदसिन है। दसिन से ही दास संबंधित है। बाद के भरहुत आदि के अभिलेखों में अनेक बौद्ध भिक्खु " दास " की उपाधि (थूपदास आदि) धारण करते हैं। लाजिन का अर्थ राजा है और यह मागधी प्राकृत के अनुसार यहाँ लाजिन है। मागधी प्राकृत में " र " का " ल " मिलता है। विसति - वसाभिसितेन का अर्थ अभिषेक के बीस वर्ष बाद है। काल - गणना की यही प्रणाली असोक के अभिलेखों में अपनाई गई है। हर काल - गणना अभिषेक - वर्ष से की गई है।

अभिलेख की दूसरी पंक्ति में अतन का अर्थ " स्वयं " और आगाच का अर्थ " आकर " है। महीयिते क्रिया है, जिसका अर्थ " पूजा की " है। फिर आगे " हिद बुध जाते " लिखा है। इसका अर्थ हुआ कि यहाँ बुध जन्म लिए थे। बुध का संस्कृत रूप बुद्ध है, जिसका विकास बाद में हुआ है। सक्यमुनी जो है, वह बुध का विशेषण है। बाद में यह शब्द बुध का पर्याय हो गया। चूँकि बुध शाक्य गण में जन्म लिए थे। इसीलिए उन्हें शाक्यमुनि कहा जाता है। शाक्यमुनि कहने से वे पूर्व के बुधों से अलग हो जाते हैं। कारण कि शाक्यमुनि बुध से पहले कोणागमन बुध आदि भी इतिहास में हुए हैं।

अभिलेख की तीसरी पंक्ति में सिला विगड भीचा का प्रयोग है। सिला अर्थात पत्थर, विगड अर्थात दृढ़ और भीचा अर्थात दीवार है। कालापित अर्थात बनवाई, सिलाथभे अर्थात शिला - स्तंभ को तथा उसपापिते अर्थात स्थापित किया गया।

चौथी पंक्ति में हिद का अर्थ " यहाँ ", भगवं का अर्थ " भगवान ", जाते का अर्थ " जन्म लिए ", ति का अर्थ " इसलिए ", लुंमिनि गामे का अर्थ " लुंबिनी गाँव के " , उबलिके का अर्थ " बलि से मुक्त " तथा कटे का अर्थ " करके " होगा।

अंतिम पंक्ति में दो शब्द हैं। एक अठभागिए, जिसका अर्थ " आठवाँ भाग " है और दूसरा च, जिसका अर्थ " और " है।

अब पूरा अभिलेख का पाठ स्पष्ट हो गया, वह यह कि अभिषेक के बीस वर्ष बाद बुधप्रिय प्रियदर्शी राजा ने स्वयं आकर पूजा की, इसलिए कि यहाँ पर शाक्यमुनि बुध का जन्म हुआ था। पत्थर की सुदृढ़ दीवार बनवाई गई और पत्थर का स्तंभ खड़ा किया गया। यहाँ भगवान जन्म लिए थे, इसलिए लुंबिनी गाँव को बलि से मुक्त (उबलि) किया गया और अठभागिया से भी। बलि एक प्रकार का धार्मिक कर था और अठभागिया भूमि कर था, जिसमें उपज का आठवाँ भाग राज्य को दिया जाता था। सम्राट असोक ने लुंमिनि गाँव को इन दोनों प्रकार के करों से मुक्त कर दिए थे।

चित्रावली

1.

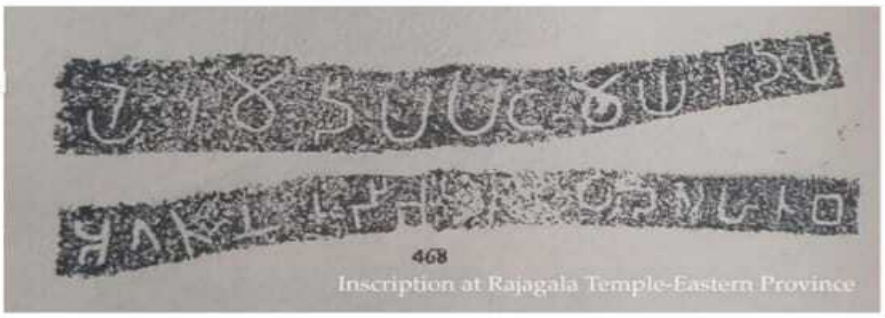

468
Inscription at Rajagala Temple-Eastern Province

2.

3.

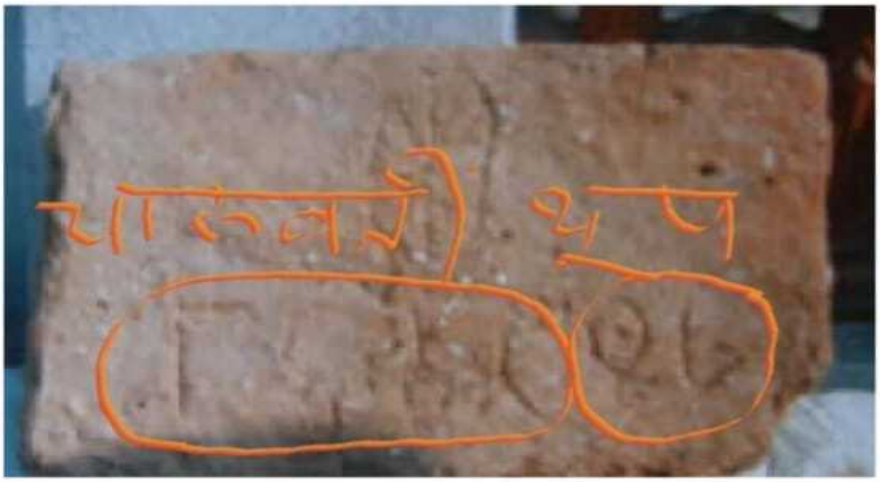

4.

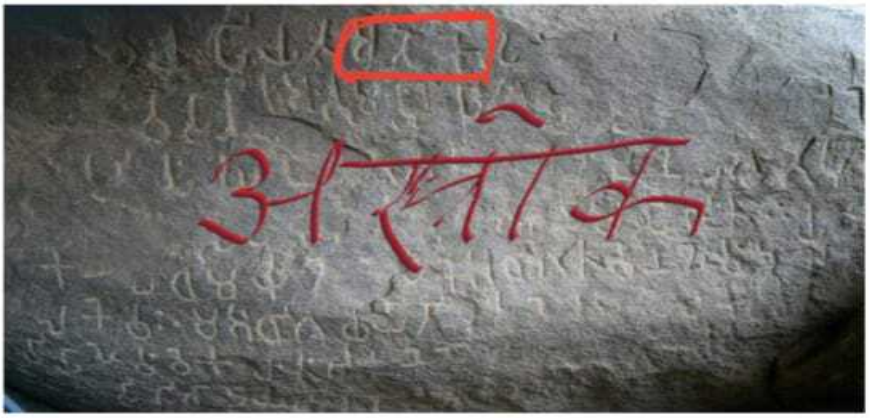

5.

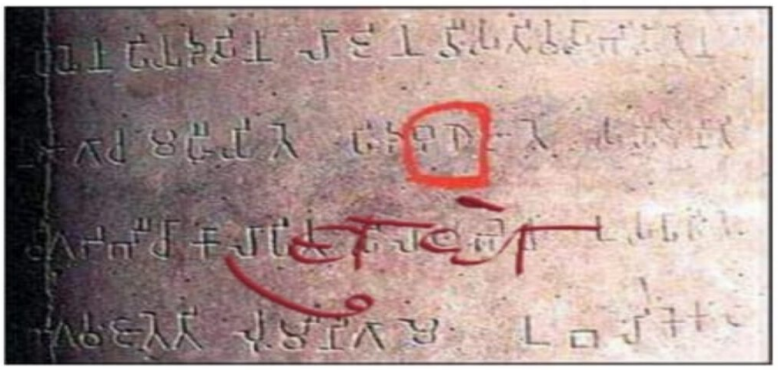

6.

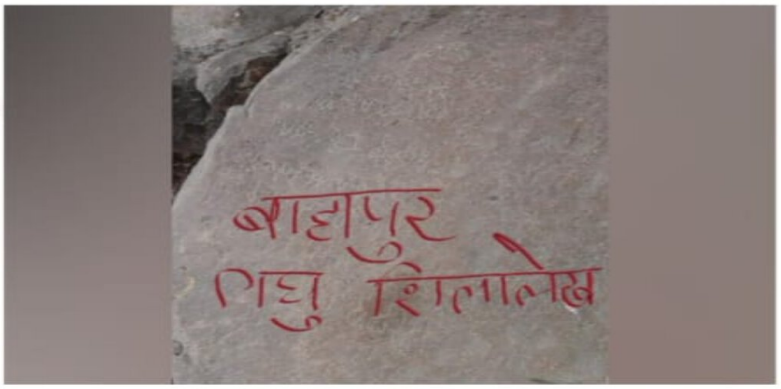

7.

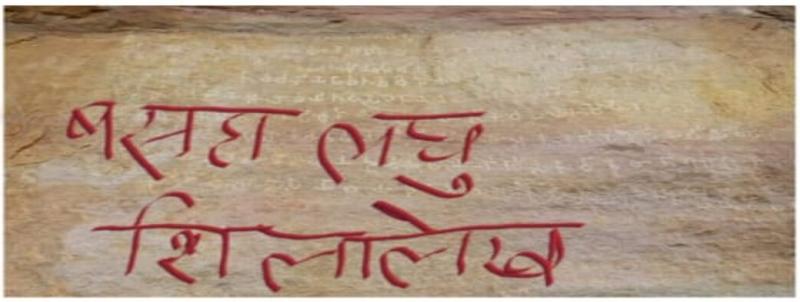

8.

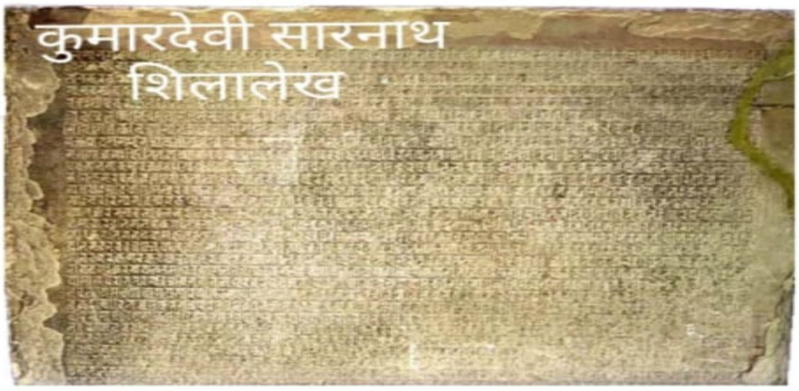

09.

10.

11.

12.

13.

Nativity Sculpture

14.

लेखक - परिचय

डॉ. राजेंद्रप्रसाद सिंह

अंतरराष्ट्रीय ख्यातिप्राप्त भाषावैज्ञानिक तथा इतिहास - मर्मज्ञ

पुस्तकें : 1. भाषा का समाजशास्त्र 2. भारत में नाग परिवार की भाषाएँ 3. हिंदी की लंबी कविताओं का आलोचना - पक्ष 4. काव्यतारा 5. हिंदी साहित्य का सबाल्टर्न इतिहास 6. हिंदी साहित्य प्रसंगवश 7. आधुनिक भोजपुरी के दलित कवि और काव्य 8. भोजपुरी के आधुनिक भाषाशास्त्र 9. कहानी के सौ साल 10. साहित्य में लोकतंत्र की आवाज 11. ओबीसी साहित्य विमर्श 12. हिंदी का अस्मितामूलक साहित्य 13. दलित साहित्य का इतिहास - भूगोल 14. भाषा, साहित्य और इतिहास का पुनर्पाठ 15. भोजपुरी - हिंदी - इंग्लिश लोक शब्दकोश 16. पंचानवे भाषाओं का समेकित पर्याय शब्दकोश 17. दि रि - राइटिंग प्रॉब्लम्स आफ भोजपुरी ग्रामर, डिक्शनरी एंड ट्रांसलेशन 18. लैंग्वेजेज आफ दि नाग फ़ैमिली इन इंडिया 19. भोजपुरी भाषा, व्याकरण आ रचना 20. भोजपुरी व्याकरण, शब्दकोश आ अनुवाद के समस्या 21. भोजपुरी के भाषाशास्त्र 22. ओबीसी साहित्य के विविध आयाम 23. इतिहास का मुआयना 24. खोए हुए बुद्ध की खोज 25. बौद्ध सभ्यता की खोज 26. शहीद जगदेव प्रसाद की दास्तान 27. जगदेव प्रसाद वाङ्मय 28. हिंदी की लंबी कविताओं पर बातचीत 29. चिनगारी 30. सम्राट अशोक का सही इतिहास 31. हिंदी के प्रमुख भाषावैज्ञानिक, बोलियाँ एवं अस्मितामूलक भाषाविज्ञान 32. नए औजार से कबीर की खुदाई 33. प्राचीन भारत का बौद्ध इतिहास, इतिहास पोखर में बुद्ध- नहान आदि।

सम्मान : बिहार सरकार के डॉ. ग्रियर्सन पुरस्कार (2016 -17) से सम्मानित।

संप्रति : प्रोफेसर, स्नातकोत्तर हिंदी विभाग, एस. पी. जैन कालेज, सासाराम (बिहार)

संपर्क : इन्कम टैक्स आफिस के पास, गाँधी नगर, सासाराम – 821115 (बिहार)